चुटकियाँ

लेखक

जी० पी० श्रीवास्तव

सम्पादक

प्रो० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०

प्रकाशक

रघुनाथ प्रसाद

भारतीय प्रकाशन मण्डल

नन्दन साहू लेन,

वाराणसी—१

प्रथम संस्करण

सितम्बर १९५९

मूल्य [illegible])

मुद्रक

खण्डेलवाल प्रेस,

मैदागिन, वाराणसी।

उत्पत्ति

हास्यरस सम्राट श्री जी० पी० श्रीवास्तव की इस अनोखी रचना की उत्पत्ति कैसे हुई यह भी एक विचित्र कहानी है।

उनके एकाङ्कियों का अनुसन्धान करते समय उनकी जीवनी की विशेष जानकारी प्राप्त करने की मुझमें प्रबल इच्छा हुई। सौभाग्यवश मैं अपने उद्योग में सफल हुआ और उनकी कलाओं पर यथाशक्ति प्रकाश डालते हुए उनकी जीवनी लिख भी डाली।

इसी जीवनी का एक परिच्छेद 'श्रीवास्तवजी के कालेज जीवन की शरारतें' के नाम से 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के सन् १९५४ के होलीकाङ्क में निकला था जो बहुत ही लोकप्रिय हुआ। इससे उत्साहित होकर सन् ५५ के होलिकाङ्को में श्रीवास्तवजी के सम्बन्ध में कुछ मनोरञ्जक सामग्री प्रस्तुत करने के लिये उद्योग करने लगा। इसी बीच बड़े दिन और नव-वर्ष की छुट्टियों में मुझे कुछ कार्यवश लखनऊ जाना पड़ा। वहीं से अवकाश निकालकर मैं श्रीवास्तव जी से मिलने गोंडा पहुँचा। उनकी पत्नी अपने चाचा के यहाँ बल-रामपुर गई हुई थीं। उनकी देख-रेख में रहनेवाले बच्चे अपनी अपनी परीक्षाओं के कारण उनके साथ न जा सके थे। सन्ध्या के समय वे सभी बैठक में इकट्ठे होकर ऊधम मचा रहे थे।

फर्श पर बहुत से कागज-पत्र बिखरे पड़े थे। श्रीवास्तवजी कुछ लिखते जाते थे और बीच बीच में बच्चों को डांटते-फटकारते भी जाते थे।

मुझे देखते ही उन्होंने लपककर हृदय से लगा लिया, किन्तु जल्दी में उनके पैर की ठोकर से फर्श पर की एक दावात उलट गई जिससे कई लिखे हुए कागज खराब हो गए। बच्चे यह देख चहक उठे—"अब बताइए, मामाजी आपको कौन डाँटे ?"

श्रीवास्तवजी ने मुझसे कहा—"अफसोस करने की कोई बात नहीं है। ये कागजात न किसी मुकदमे के हैं और न किसी रचना के ही हैं। मामूली खत हैं। फिर लिख दूँगा।"

पत्र का नाम सुनते ही मेरी उत्सुकता बढ़ गई, क्योंकि मैं जानता था कि श्रीवास्तवजी के पत्र बड़े ही मनोरंजक होते हैं। उनमें हास्यरस की अनूठी छटा छाई रहती है। कालेज-जीवन में उनके सहपाठी उर्दू के विख्यात कवि श्री जगतमोहनलाल "रवाँ" उनके पत्रों को सुरक्षित रखते थे और छुट्टियों के पश्चात् जब लखनऊ आते थे तब उन पत्रों को अपने सहपाठियों को अनेक बार सुनाते थे।

मैंने कहा—"यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो मैं इन पत्रों की प्रतिलिपि कर लूँ ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"इन पत्रों में कोई गुप्त बात नहीं है। हाँ, जरा बेतुके जरूर हैं जैसी मेरी आदत है; और शिष्टता

की दृष्टि से भद्दे भी हैं। फिर भी आप कष्ट न करें। दूसरे की लिखावट देखकर कहीं वे लोग चिढ़ न जाएं।"

मैंने जब उन पत्रों को पढ़ा तब दंग रह गया। क्योंकि वह चिट्ठियाँ नहीं, सच पूछिये तो व्यंग की चुटकियों से भरी हास्य की फुलझरियाँ थी। शैली का क्या कहना बात बात पर ऐसा बलखाती हुई अठखेलियाँ दिखाती थीं कि मुझसे न रहा गया। श्रीवास्तवजी से अनुमति लेकर उनमें से कुछ 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', और कुछ 'नोंक-झोंक' के होलिकाङ्कों में भेज दिया।

उस दिन से जब कभी लेख की मांग आई श्रीवास्तवजी लेख या कहानी भेजने के बदले उत्तर का पत्र ही लिखने लगे। और उत्तर देते हुए उनमें अपनी कला का वह चमत्कार दिखाने लगे कि उनका प्रत्येक पत्र स्वयं ही जीती जागती फड़कती हुई चटपटी कहानी की बहार दिखाने लगा।

इस प्रकार कहानी साहित्य के इस नवीन कला के सृजन की ओर उनका ध्यान आकर्षित करने का श्रेय उनके कथनानुसार मुझी को है। इसी कारण आपलोगों की सेवा में उनकी इस अपूर्व रचना के प्रस्तुत करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। इस सम्मान के लिये मैं श्रीवास्तवजी का आभारी रहूँगा।

हेबर्ट कालेज,
कोटा (राजस्थान) } (प्रोफेसर) रामचरण महेन्द्र

लेखक की आगामी पुस्तक

- भक्तिन
- कम्बख्ती की मार

चुटकियाँ

इस परिच्छेद में तीन निजी पत्र हैं और चौथे में लेखक ने "चाणक्य" प्रतिक्रियाङ्क पर अपनी सम्मति लिखी है। निजी पत्रों में भी आपकी अनूठी और चुलबुली लेखनी व्यंग की चुटकियों से गुदगुदाती हुई हास्य की रंगरेलियाँ दिखाने से नहीं चूकती।

प्रथम पत्र में आजकल के अस्थाई नौकरियों तथा जाति में रिश्ते के बल पर गर्व करने वालों पर व्यंग की बौछार है तो दूसरे में व्यंग की पूरी डिक्शनरी है। जिसका प्रत्येक शब्द अपना हार्दिक और वास्तविक अर्थ दिखला कर मारे हँसी के पेट में बल डाल देता है। "देवी" पर व्यंग गहरा है। इस पर लेखक महोदय ने स्वयं ही अपने "आदर्श के चक्कर में" नामक पत्र में बहुत ही सुन्दर प्रकाश डाला है। तीसरे में आधुनिक साहित्य, सम्पादक तथा समालोचकों का व्यंगपूर्ण दृष्टि से सत्कार किया गया है और चौथे में लेखकों की वास्तविकता का व्यंग-पूर्ण चित्रण है।

सम्पादक

[अपने छोटे भाई के साले श्री हनुमानप्रसाद तथा उनके पुत्र श्रीराम बाबू को]

गोंडा

जय हनुमान स्वामी की,

तथा जय राम रमारमणं शमनं,

किसी के जीजा-जिजाइन और किसी के फूफा-फुफाइन का सलाम बन्दगी दोआ स्थाने अगयां वगयां। अण्डे बच्चों को डाँट-फटकार और कुटुम्बस के साथ ढेरों आशीर्वाद और उनको जिनको मुहल्लेवाले दिल में तो कहते हैं भाभी मगर डर के मारे कहते हैं काकी, हाँ, उन्हीं को जिनका नाम लेने का आपको साहस नहीं होता, फिर मैं उनका नाम कैसे ले सकता हूँ। हाँ, उन्हीं को मुँह पर केवल साष्टांग प्रणाम, परन्तु दिल के भीतर प्रणाम के साथ भेंट अंकवार भी, अगर वह बुरा न मानें तो।

आपने 'बेबी' की शादी ठीक कर ली और फलदान भी चढ़ा आए, जानकर बड़ी खुशी हुई। क्यों न हो आप बड़े पूँछ के आदमी क्या साक्षात् हनुमान जी हैं, आपकी पूँछ हर जगह है। शादी-ब्याह में पूँछ ही काम देती है। ईश्वर करे दिन दूनी रात चौगुनी यह लम्बी होती जाए।

शादी तय होने की बात तो बताई, मगर यह नहीं लिखा कि क्या मुझे भी आना पड़ेगा? क्योंकि मैं बिना सौ-सौ

खुशामद कराए और दिल खुश करनेवाली लालसा दिलाए टस से मस नहीं होता; नहीं तो वहाँ मेरी जगह पर काम चलाने के लिए किसी को 'टेम्परारी' (अस्थायी काम-चलाऊ) जीजा आपको अवश्य बनाना पड़ेगा। इन दिनों टेम्परारी का फैशन भी है। हर जगह टेम्परारी ताकि बुद्धिमान इस चाँदनी में अपने भविष्य की अँधियारी भी दूर कर लें। इसलिए बेहतर यह है कि आप अभी से मेरी खुशामद शुरू कर दें।

दिल में प्यार करनेवाला और रिश्ते की लाज रखने के लिए ऊपरी मन से खुशामद पसन्द भी—

आपका

जी० पी० श्रीवास्तव

[एक विदुषी को]

किसी की दीदी, किसी की कुछ और मेरी परम

माननीया मानसिक संजीवनीजी,

सबसे पहले मुझे अपने चरण कमल को सलाम, बन्दगी, प्रणाम, नमस्कार, आलागन, पालागन के स्वीटेस्ट मिक्स्चर से खूब तर कर लेने दीजिए ताकि इस पत्र के पढ़ते समय आपके मिजाज में गरमी न चढ़ने पाए।

जिस दिन आपका कृपा-पत्र मिला, मारे शेखी के मेरे पाँव जमीन पर न पड़ते थे। यही जी चाहता था कि इस पत्र को माथे पर चिपकाकर चौक घूमने जाऊँ, ताकि लोग जाने कि कोई ऐसा भी संसार में है, जो इस बागड़ बिल्ले को आदमी समझता है।

उसी दिन से पत्र लिखने के लिए दिल में ऊधम मचा हुआ था।

इधर श्रीमतीजी भी बार-बार हुरपेट रही थीं कि दीदी को पत्र लिखो ताकि उनका पत्र जल्दी आए। उनके पत्रों में अपूर्व मिठास रहती है, बिलकुल 'रसोगुल्ला' सी। मैंने कहा ठीक कहती हो। यह मिठास इसलिए कि उन्होंने अपना प्रथम नमस्कार मुझे लिखा है। बस, बिगड़ उठीं। लगी कहने—"तुम क्या जानो स्त्रियों को। वे उल्लुओं को ही अग्रासन देती हैं।" मैंने उत्तर दिया—"वाह उल्लुआइन जी, आप खूब समझीं।" खैर

पत्र तो लिखने बैठ गया। मगर एक नई परेशानी सवार हुई कि आप जैसी उच्चकोटि की विदुषी का सत्कार किन शब्दों में करूँ। क्योंकि सत्कार के जितने भी प्रचलित शब्द हैं, उनकी पोल हमारे इष्टदेव ने ऐसी खोल रखी है कि वह आपके सम्मान में किसी प्रकार भी प्रयोग में नहीं लाये जा सकते। शायद विश्वास न हो। इसलिये उनकी डिक्शनरी का एक पृष्ठ आपके मनोरञ्जन के लिये लिख देता हूँ। मगर एक ग्लास खूब ठंढा शरबत पीकर पढ़ियेगा।

शब्द	वास्तविक-अर्थ (हार्दिक)
१—अभिवादन	धत्तेरे की।
२—मिजाज शरीफ़	ऐसी-तैसी में जाओ।
३—शिष्टाचार	विषकुम्भम् पयोमुखं। (खालिस ढोंग)
४—मित्र	जोंक (Blood sucker)
५—सम्बन्धी	बगली घूँसा (Cut Throat)
६—आत्मीय	आस्तीन का साँप।
७—पिता	उल्लू की दुम।
८—पुत्र	घर फूँक बहादुर
९—देवी	मक्खी पड़ी दाल-(जिससे दिल बिचके)
१०—सुन्दरी	प्राणघातक क्लोरोफार्म
११—प्रेमिका	गुड़भरी हँसिया (Suger-Coated-Poison)
१२—श्रीमतीजी	हर दम नाक में दम
१३—पतिदेव	गर्दभानन्द (Beast of Burden)

शब्द	वास्तविक-अर्थ (हार्दिक)
१४—श्रीमान्	बगुला भगत
१५—प्रेमी	काठ का उल्लू (Idiot)
१६—प्रेमी हृदय	रमणियों का फुटबाल

इसलिये आपके सम्मान के लिये बिल्कुल ही नया शब्द ढूँढ़ निकाला है। आप पूछेंगी क्या ? साक्षात Intellectual Balm अर्थात् मानसिक सञ्जीवनी जिसकी मुझे अब बड़ी जरूरत है। क्योंकि काम करते-करते शरीर घिस गया। दिल व्रत और उपवास करते मर मिटा। अब जरा सांस केवल दिमाग ही में चल रही है। अगर इसको भी अब कभी कभी पुष्टई न मिली तो बस मामला ठन ठन गोपाल है।

इसीलिये पत्र लिखने का साहस किया कि आप महीने में एकाधबार खूब हँसकर अपने फेफड़े को व्यायाम करा दिया करें और साथ ही मेरे दिमाग की झाड़पोंछ भी। ब्रुश से न हो सके तो खरहरे से ही सही।

आप सब लोगों का
शुभचिन्तक, सेवक तथा कृपाभिलाषी
जी० पी० श्रीवास्तव

[एक साहित्य सेविका को]

गोंडा

चिरंजीवी साहित्य कृपाभिलाषनी,

सदा खुश रहो और साहित्यकला में दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करती रहो। इस बात की चिन्ता न करो कि तुम छै कहानियाँ लिख चुकी हो और छपी अब तक एक भी नहीं हैं। तुम्हारी कहानियाँ सभी अच्छी और छपने योग्य हैं। जब पेट ठसाठस भरा होता है, तब अमृत के लड्डू पर भी निगाह नहीं डाली जाती। यही हाल पत्र-पत्रिकाओं का है। अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ अब कम्पनी द्वारा निकल रहे हैं, जहाँ के कर्मचारियों को बिल्कुल मशीन की तरह काम करना पड़ता है। इन लोगों को दिल और दिमाग से काम लेने की भला फुरसत कहाँ? इन्हें तो बस यही फिक्र रहती है कि किसी तरह काम चलता रहे और मुझे वेतन मिलता रहे। ईश्वर की कृपा से यह लोग कुछ मजदूरी भी देने लगे हैं। इसलिए यहाँ लेखकों की भीड़ भी वैसी ही होती है, जैसे 'बस' स्टेशनों पर टिकट खरीदने वालों की। अगर लाइन में गिनी संख्या के अन्दर आ गये, तो वाह-वाह नहीं तो हाय हाय तो है ही।

एक 'बस' स्टेशन वजीरगंज में है और दूसरा है ८ मील की दूरी पर नवाबगंज में। एक बार दौरे से लौटते हुये इन्हीं

दोनों स्टेशनों के बीच सड़क पर यह सोचकर आ रहा था कि रास्ते में 'बस' पकड़ लूँगा। 'बस' निकली लगभग बिलकुल खाली। मैं लाख हाथ हिलाता रहा, वह न रुकी; क्योंकि अगर रुकती तो एक मिनिट अधिक पेट्रौल जलने का हिसाब ड्राइवर को देना पड़ता, कन्डक्टर को टिकिट बनाने का झंझट उठाना पड़ता और बस पर कानून भी है कि 'बस' रुकेगी तो अपने स्टेशन ही पर। यही हाल है बेचारे सम्पादकों का। अखबार तो झखमार कर बिकेगा ही, क्योंकि चाय के साथ अखबार पढ़ने का सबको चसका हो गया है—

अखबार का पेट भरने के लिए चोरी डाका, नित नए कानून, नयी योजनाएँ, नेताओं के टकसाली भाषण हैं ही। इस तरह तनख्वाह में अब कोई शक नहीं तो साहित्य के लिये उपज, नवीनता, मौलिकता, चरित्र चित्रण, शैली, स्वाभाविकता, प्रभाव, चमत्कार, वास्तविकता, रोचकता, भाव, प्राकृतिक ज्ञान, सुधार इत्यादि के झगड़े में कौन पड़े? इन झंझटों से दूर रहकर मुफ्त में साहित्य महारथी बनने के दो ही उपाय हैं। दूसरों की रचनाओं पर उल्टी झाड़ू फेरना या फिर पहाड़ ऐसे बेभाव के शब्दों का प्रयोग करना जो सम्पादकजी की भी समझ में न आये। तभी वह उच्चकोटि का लेख समझा जायेगा और छप जायेगा।

इसलिये अगर सचमुच हताश होने लगी हो तो साहित्यिक

'बस' स्टेशन के अपर क्लास की खिड़की पर चली जाओ; वहाँ शीघ्र टिकिट मिलने की सम्भावना है। अर्थात बजाये लेखिका होने के एकवर्गीय समालोचिका बन जाओ, क्योंकि गुण से अधिक दोष जल्दी दिखाई देते हैं। इसके लिये ज्ञान, समझ और योग्यता की भी कुछ जरूरत नहीं। जो चीज न समझ में आवे, उसको बुरा कहो। भद्दा, फूहड़, गवाँर, अश्लील, अतिशयोक्ति सभी कुछ एक साँस में कहडालो। इन बातों में मैं बड़ी बड़ी डिग्रियाँ प्राप्त किये हुए हूँ। इन्हीं की बदौलत न जाने कितने उच्चकोटि के समालोचक बन गये। तब तुम क्यों चूकती हो। कुछ दिनों मुझी पर हाथ साफ करो। मुझे तनिक भी बुरा मालूम न होगा, क्योंकि इससे न मेरी रोटियाँ चलती हैं, और न नेकनामी और बदनामी से मेरा कुछ भला बुरा होने वाला है; न कहीं इनाम पाने की आशा है और न कुछ लिखने का ही शौक रह गया है। ईश्वर की कृपा से सभी प्रकाशकों को अब स्कूली पुस्तकें छापने से फुरसत नहीं मिलती। एक बार यह कर के देखो तो! इसके लिए रूप-रेखाएँ भी अगले पत्र में स्वयं ही भेज दूँगा। उन पर तुम अपना लेख तैयार करो, वह जरूर छपेगा।

आशा है कि अगले अंक में तुम्हारी एक कहानी निकलेगी। हिम्मत न हारो। धैर्य से काम लो।

तुम्हारा शुभचिन्तक

जी० पी० श्रीवास्तव

गोंडा

प्रिय व्यंग्याचार्यजी,

दंडवत। 'चाणक्य' के 'प्रतिक्रिया अंक' के लिये धन्यवाद और उसकी अपूर्व वास्तविकता, मौलिकता और सफलता पर कोटिशः बधाइयाँ।

विचार-क्षेत्र में सबसे अधिक अमूल्य मौलिकता और नवीनता ही है जिसका मैं सदा पुजारी रहा हूँ। इसलिए यह अंक मेरी दृष्टि में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।

साहित्यकारों को मार-मार कर सीधे रास्ते पर चलाने का उद्देश्य भी उत्तम है और कठिन भी। इसकी कठिनाई का हाल वही कुछ बता सकता है जिसे कभी अड़ियल टट्टू हाँकना पड़ा हो, या तोते को पढ़ाना। और तोता और टट्टू भी कैसे, जिन्हें कभी दाना मिले न घास। खाली हवा खाते हैं। शुभकामनायें सहित।

शुभाकांक्षी

जी० पी० श्रीवास्तव

फुलझरियाँ

इस परिच्छेद में तीन निजी पत्र तथा चौथी और पाँचवीं सम्मतियाँ हैं। कहने को तो पत्र हैं हीं, मगर वास्तव में हैं हास्यरस की फुलझरियाँ। इनमें शैली अपनी ऐसी अठखेलियाँ दिखा रही हैं कि बात बात पर गुदगुदी मच उठती है। मुर्दादिल भी खिलखिला कर हँस पड़ता है। लेखक की लेखनी हँसी हँसी में भी बातें ऐसी गहरी और तुक की कह जाती है जिसका आनन्द बस दिल ही लेना जानता है।

उदाहरणार्थ प्रथम पत्र में पत्नी को "खटमिट्ठी चटनी पुदीने वाली" कह कर सम्बोधन करना और आशीर्वाद में "सदा चटपटी बनी रहो" कहना और फिर अन्त में "तुम्हारी डाँट फटकार का हरदम भूखा" रहना स्वीकार करना दाम्पत्य प्रेम की पूरी बहार दिखाने तथा पत्नी जाति की वास्तविकता के चित्रण में गजब ढा रहे हैं।

सम्मतियों का भी ढंग एक दम नया और निराला है। 'तरंग' में प्रकाशित 'अपनी जवानी' तथा 'डाक्टरी का विज्ञापन' नामक कहानियों की जो आलोचना हुई है वह भी इस पत्र की छेड़ छाड़ में घुलमिल कर अपनी ऐसी शोखियाँ दिखा रही हैं कि सम्मति खिल उठी है।

सम्पादक

[अपनी पत्नी को]

वाह री मेरी खटमिट्ठी चटनी पुदीनेवाली,

सदा चटपटी बनी रहो।

मैं २६ को फिर बलरामपुर जाने के बजाय उतरौला से सीधे आठ बजे रात को यहाँ आ गया। खयाल था कि तुम बलरामपुर से सबके साथ मेरे आने के दो घण्टे पहले ही पहुँच गई होंगी। मगर घर का कोना-कोना ढूँढ़ डाला; तुम न मिलीं। भुन-भुनाकर रह गया। तुम क्या जानो कि बुढ़ापे में पत्नी वैसी ही जरूरी है, जैसे बचपन में बच्चे के लिए माँ। लाख पेट भरा हो, मगर जहाँ माँ आँखों से ओझल हुई कि ढाँढे मारकर रोना शुरू किया। वही हाल मेरा नहीं तो कम-से-कम मेरे दिल का था। भजन ने डाक दी। चाँद कार्यालय के अध्यक्ष सहगलजी तथा उनकी धर्मपत्नी ने हमारे तुम्हारे लिये नववर्ष की शुभ कामनाएँ भेजी हैं। कमला गोरखपुर से साहित्यरत्न द्वितीय वर्ष की परीक्षा दे रही है। महेन्द्रजी नववर्ष की बधाई देने स्वयं आ रहे हैं। किसी तरह खा-पीकर लेट गया, मगर नींद नहीं आई। तुमने मेरी आदतें ऐसी बिगाड़ रखी हैं कि बिना तुम्हारे कहे मैं कुछ कर ही नहीं सकता। तब तुम्हीं बताओ, सो कैसे सकता था।.........मैं अपने ही घर में तुम्हारे बिना एकदम लावारिस उठल्लू-सा हो रहा हूँ। इसलिए आना हो तो जल्दी आओ, नहीं तो मैं बिलकुल हाथ से बेहाथ हो जाऊँगा। जाने रहो।

तुम्हारी डाँट फटकार का हरदम भूखा,

जी० पी० श्रीवास्तव

[अपनी साली को]

मेरी चिकनी-चुपड़ी श्रीमती गलफुलनी देवीजी,

बाप रे बाप ! इतना गुस्सा ? आपने लल्लन बाबू के हाथ यह कहकर मेरा पत्र लौटा दिया कि मैं ऐसा बेहूदा पत्र नहीं पढ़ती। तब पढ़ना-लिखना किस दिन के लिए सीखा था ? अरी महारानी, जब ईश्वर ने जबान दी है, तब वह मीठा भी चखेगी, खट्टा भी और उसपर कड़वा भी। यही हाल लिखने-पढ़ने का है। नहीं तो जब आप खाली हूदा ही हूदा पढ़ेंगी और बेहूदा मेरे लिए छोड़ देंगी, तब आपका मिजाज ही एक दम काना हो जाएगा। खैर मुझे इसी में संतोष है कि आपने उसे पढ़ा तो, तभी तो हूदा और बेहूदा का ज्ञान हुआ। आपकी इस गरम मसाले की तरह परपराहट में दिल का हाल न पूछिए, और भी चटपटा उठा। वह समझ गया कि आप लोग इसीलिए मुँह फुला बैठी हैं कि मनाने के बहाने मैं जल्दी आ जाऊँ और क्रोध का भूत उतारूँ। मगर भवानी, आप लोगों को पेट फुलाना शोभा देता है, मुँह फुलाना नहीं। जो कहीं पेट फूलता तो कुड़ुमधुम करता हुआ नाचता गाता सर के बल दौड़ा आता। मगर अब तो वहाँ जाने के नाम से ही दम फूलने लगा है। तब तक आप टिंचर की एक शीशी मँगवा लीजिए। सूजन की बड़ी अच्छी दवा है। जैसे ही मुँह पिचके फौरन लिखिए। मैं कबड्डी मारकर आता हूँ।

चारों हाथ-पैर जोड़कर आप सब भवानियों को नमस्कार करता हुआ मैं ही हूँ,

आप लोगों का,

जी० पी० श्रीवास्तव

तीन में न तेरह में।

वाह रे मेरी लीली,

नन्हीं सी हो। पर हो बड़ी रसीली, शोख भी हो और नट-खट भी। बातों बातों में कहानी सुना कर रिझाती हो। ठठोली कर के हँसाती हो। और गजब ढाती हो जब कार्टूनों से खिल्ली उड़ाती हुई मुँह बिचका कर कहती हो मेरी लिली, टीली लीली।

गङ्गा आश्रम, गोंडा। } तुम्हारे प्रेमियों में—
जी० पी० श्रीवास्तव

[अपने एक प्रकाशक मित्र को]

मेरे रंगीले प्रकाशक तथा आपकी पूज्यनीया Her Mejesty जी की शुभ सेवा में,

आप लोगों की नववर्ष की शुभ कामना पाकर हमारी 'वह' का हाल न पूछिए। मारे खुशी के ऐसी फूलीं कि बिलकुल क्वीन विक्टोरिया बन गईं। इस खुशी में मुझे भी खानसामा से एकदम अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया और हुक्म दिया कि फौरन नववर्ष के उपलक्ष में अथाह शुभ कामनाएँ, अपार बधाइयाँ, पसेरियों प्रणाम और बच्चों के लिए खैंचियों प्यार और आशिर्वाद बुकपोस्ट, रजिस्टर्ड-पोस्ट, एक्प्रेस डिलीवरी, बीयरिंग सभी तरीके से डिस्पैच करो, मगर हिन्दी में, ताकि सभी पढ़कर अपना-अपना हिस्सा ले सकें और तनिक बेईमानी न होने पावे, दूसरा हुक्म यह हुआ कि आप लोगों से अनुरोध करो की शीघ्र ही इलाहाबाद में एक शादी होने वाली है, जिसमें आप सब व्यक्तियों का सम्मलित होना बहुत जरूरी है और यह भी सूचना दो कि हम लोग उस अवसर पर आपलोगों के दर्शन करने अवश्य आवेंगे और वहीं 'रशोगुल्ला' खाने की आशा करेंगे। बस फुलस्टाप। अब इसके बाद मेरी भी छोटी मोटी विनती सुन लीजिए। वह यह कि मेरी पुस्तकों को यथाशक्ति शीघ्र प्रकाशित करने का कोई उपाय निकालिए। नहीं तो मेरे दिल के सारे वलवलों का फुलस्टाप हो जायगा।

आप लोगों का कृपाभिलाषी और अपनी
क्वीन विक्टोरिया का प्राइवेट सेक्रेटरी,

जी० पी० श्रीवास्तव

[तरङ्ग सम्पादक श्री बेधड़क बनारसी जी को]

भाई बेधड़कजी के हृदय की मस्तानी 'तरंग'

देखने में पतरसुट्टी-सी हो; मगर हो सचमुच बड़ी मस्तानी। छेड़ती हो, गुदगुदाती हो और उसपर चुटकियाँ भी लेती हो, ऐसी गहरी कि दिल ही जानता है। इस बार तो 'अपनी जवानी' में ऐसी जवानी दिखाई है कि हंसते-हंसते एकाएक रोंगटे खड़े हो गए। चित्र उतारने में फोटोग्राफर के भी कान काट लिए। तुम्हारी 'लाण्डरी के विज्ञापन' की क्या कहूँ? यही जी चाहता है कि कपड़े नहीं स्वयं को ही तुमसे धुलवाकर अपनी कायापलट करा लूँ। मगर डरता हूँ कहीं भट्टी पर न चढ़ा देना।

अच्छा अब जरा अपने उनको भी बुलादो तो उनसे भी दो-दो बातें कर लूँ।

......हाँ, सुनिए, बेधड़कजी, ईश्वर करे आपकी यह चटाख-पटाख वाली धोबिन आप पर बराबर इस्तरी किया करे। यही मेरी नववर्ष की बधाई है। रह गया मेरा हाल। उसे न पूछिए। दिल अब ऐसा बालू का मैदान हो गया है कि उसमें से तेल भी नहीं निकल सकता और न उसपर नयन-सयन, ताक-झाँक, पावडर, लिपस्टिक का कुछ बस चल सकता है। मैं तो अब ढकेले जाने पर किसी तरह कांखता-कूंखता लंगड़ाता हुआ विवशता में पड़कर वहीं जाने की कभी-कभी कोशिश करता हूँ जहाँ देखता हूँ कि मेरे बिना चाण्डाल चौकड़ी का कोरम पूरा नहीं होता।

आपका शुभचिन्तक,

जी० पी० श्रीवास्तव

बलिहारी

बलिहारी है लेखक महोदय की लेखनी की। दुनिया को पत्र लिखते हुए दुनिया का चित्रण करने में सचमुच कमाल ही कर दिया है। इतना सुन्दर, वास्तविक, और व्यंगपूर्ण चित्रण मुहावरेदार और बोलचाल की हँसती हुई भाषा कदाचित ही किसी साहित्य में हो।

इसके अतिरिक्त इसमें दुनिया की करतूतों के जो तमाशे दिखाये गये हैं—विशेष कर रेल तथा कानून के क्षेत्र में—वे दिल खोल कर हँसाते भी हैं और सुधार के लिए व्यग्र भी कर देते हैं।

छोटे-छोटे स्टेशनों पर विशेष कर रात के समय जनाने और इण्टर (जो अब दूसरे दर्जे में मिल गया है) के डब्बे ढूँढने में मुसाफिरों को कितनी कठिनाइयाँ होती हैं और अब उनमें भीतर से एक दम बन्द रखने के लिए सिटकनी लग जाने से वह कठिनाइयाँ और भी कितनी बढ़ गई हैं, इस मनोरञ्जक पत्र में देखिये जो पत्र भी है, रूपक भी है और कहानी भी।

सम्पादक

उँगलियों पर नचानेवाली मेरी अनोखी दुनिया,
चरणों पर नाक रगड़ता हूँ ।

आहा ! देखने में कैसी सीधी-सादी, भोली-भाली हो, मानो तीन-पाँच कुछ जानती ही नहीं। मगर गरज पड़ने पर ऐसी नौ दो ग्यारह होती हो कि तुम्हारी गर्द तक नहीं मिलती। तुम्हें पाना, परछाहीं पकड़ना है। इसीलिये जब तुम भागती हो उत्तर, तो मैं भागता हूँ दक्खिन। लेकिन भाग कर जाऊँ तो कहाँ ? हर जगह तो तुम ही तुम हो।

लो, तुम फिर आ पहुँची। समझ गया तुम्हें किसी मूर्ख-मण्डली के लिये सभापति की जरूरत है या बेवकूफों की फेह-रिस्त बनाने वाली हो। हो न हो, बात कुछ ऐसी है, वर्ना तुम भला मुझे क्यों पूछने लगी ? क्योंकि यह मैं खूब जानता हूँ कि जब गुलछर्रे उड़ाना होगा या कृपाओंकी वर्षा करनी होगी, तब फज़ाने हैं, ढिमाके हैं। मगर जब उल्लू बनाना होगा तो उसके लिये अकेला मैं ही हूँ टुटरूँ टूं। और तारीफ है कि फिर भी तुम्हें नहीं समझ पाता !

खैर यही क्या कम है। हूँ तो एकलौता। इसी गुणमें सही। इसी की बदौलत तुम्हारी निगाहों में खटक जाने का भी कभी-कभी सौभाग्य तो प्राप्त कर लेता हूँ।

अगर तुम बाहर जितनी चिकनी चुपड़ी हो, उतनी कहीं

भीतर भी होतीं तो आहा! क्या कहना था। झट सिर-आँखों पर उठाकर तुम्हें ले भागता। फिर तो तुम्हें एकदम बैकुण्ठ बनाकर अपने गले का हार बना लेता। मगर काहे को नौ मन तेल होगा और काहेको राधा नाचेंगी। उस पर यह भी तो डर है कि कहीं तुम इसको अपना अपमान न मानो, क्योंकि तुम्हें तो उन्हीं की संगत पसन्द है, जो करें कुछ भी नहीं, मगर शोर मचावें बहुत, कहें कुछ करें कुछ, जिस पत्तल में खायँ, उसी में छेद करें, मुँहपर हीं हीं हीं हीं, दिल में धत्तेरेकी। बस इन्हीं पर तुम्हें गर्व है। इन्हीं के गले में सफलता की जयमाल पहनाती हो। इन्हीं पर तन-मन-धन-आदर-प्रतिष्ठा सब कुछ न्योछावर करती हो, क्योंकि तुम्हारी दृष्टि में सज्जन हैं तो यही हैं, आदरणीय हैं तो यही हैं। बाकी तो सब कूड़ा-करकट हैं, झाड़ुओं से बात करने योग्य।

छल, कपट और धूर्तता की पीठ ठोकनेवाली तुम हृदय को भला क्या समझो? सचाई, ईमानदारी, प्रेम और आत्मबलिदान किस चिड़िया का नाम है, क्या जानो? तुम्हें तो इन बातों से वैसा ही परहेज है, जैसे लक्ष्मी को योग्यता से, प्रेमिका को प्रेमी से, भाषा को सरलता से, साहित्य को वास्तविकता से, समालोचक को ज्ञान से, शिष्टता को भाव से, आजकल के जमाने को अक्ल से और मुझे तुम्हारी लापरवाही से।

क्योंकि अगर तुममें इतनी लापरवाही न होती तो भला जमाने की धांधली चल सकती थी?

धांधली भी कैसी ! बस अक्ल की बलिहारी है। हर जगह और हर बात में। न विश्वास हो तो इसकी बानगी मेरी एक आपबीती ही में देख लो।

मैं करनलगंज से दोपहर की 'एक्सप्रेस' से आने वाला था। साथ एक बाबू साहब भी थे। मिजाज जरा भुनभुन था। मगर थे बड़े परहेजगार। कम से कम दिन में। रात का हाल ईश्वर जाने। एक्सप्रेस के आते ही हम लोग डेवढ़ा दर्जा निगाहों से टटोलने लगे। बाबू साहब ने कहा—"मैंने टीप लिया। आगे है।"

हम दोनों भदभद करते आगे दौड़े क्योंकि गाड़ी की रुकावट दो ही मिनट की थी। वहां पहुँचने पर देखा कि उस पर खड़िया मिट्टी से लिखा है—"जनाना"। फिर पीछे भागे। किसी तरह डेवढ़े दर्जे को ढूँढ़ निकाला। मगर सभी खिड़कियों में शीशा चढ़ा। दरवाजा खोलना चाहा तो भीतर से बन्द। हम लोग भड़भड़ाते-भड़भड़ाते थक गये, मगर किसी के कान जूं न रेंगी कि सिटकिनी तो खोल दे !

मैंने कहा—"वाह रे ईश्वर ! हिन्दुस्तानियों को दिल देना भूल गये।"

बाबू साहब झल्ला के बोले—और रेल बनाने वालों को तो खाली दिल ही नहीं, अक्ल भी देना भूल गये। जैसे गदहों में गदहा पहचानना मुश्किल है, उससे ज्यादा मुश्किल है, क्षण भर में डेवढ़ा या जनाने दर्जे का ढूंढ़ लेना। सभी दर्जों का

रंगरूप एक। दर्जों की लिखावट मिलती-जुलती, सिकुड़ी हुई, जो तेजी में लिप-पुतकर सब बराबर। कभी आगे, कभी पीछे, कभी बीच में। गोया डेवढ़ा दर्जा नहीं भूलभुलैया है। उस पर भीतर से अब बन्द करने के लिये सिटकिनी लगाकर जले पर और नमक छिड़क दिया। जानते हैं कि इसमें एक ही आदमी बैठेगा और बाकी सब हर स्टेशन पर खाली झख मारने के लिये टिकट खरीदेंगे। गाड़ी की रुकावट स्टेशनों पर जब दो मिनट की हो गयी तब इतनी भी अक्ल न आई कि दर्जों में कुछ न कुछ विभिन्नता कर दें। और न सही तो दरवाजे ही रंगबिरंगे कर दें। डिब्बे पर मोटे और फैले हुए अक्षरों में दर्जा लिखें। रात में पहचानने के लिए उन पर विभिन्न रंग की रोशनी लगावें। यह सब तो न सूझा। सूझा तो क्या कि भीतर सिटकिनी लगा दो। इसी को कहते हैं—"अब बौरी कोऊ देत है मतवारिन हथियार।"

मैंने कहा—"वाह! बाबू साहब! कैसी रसीली मिसाल दी है। गुस्से में कभी कभी आप इतनी गहरी अक्ल की बात कह जाते हैं कि तारीफ नहीं हो सकती। गर्म होने पर आप का दिमाग सचमुच फिलासफर हो जाता है।"

वह बात काट कर बोले—"और उस गार्ड की समझ अक्ल और आखों पर ... ..." (सांस फूल गयी)

मैंने झट से वाक्य पूरा कर दिया—"स्वतन्त्रता का पर्दा पड़ा हुआ था"—बाबू साहब ने अब साँस लेकर कहा—"तभी तो

हमलोग भड़भड़ाते ही रहे और वह झण्डी हिलाकर गाड़ी एक दम ले भागा।"

तब तक पैसेंजर गाड़ी के इन्तजार में आये हुए यात्रियों में से एक बोल उठा—"अजी इन लोगों के साथ तो वही करे जो एक मुगलिया ने किया था।"

पूछने पर उसने बताया कि—"जैसे ही गाड़ी छूटी वैसे ही एक मुगलिया दौड़ता हुआ आकर गाड़ी पर चढ़ने लगा। गार्ड ने दूर ही से डाँटा—"खबरदार! चलती गाड़ी में चढ़ना मना है।" यह कह कर गार्ड साहब अपने 'ब्रेक' पर उचक गये। मुगलिया ने झट उनकी कमर पकड़ कर नीचे घसीट लिया और बोला—तोमरा कानून गिरगिट के माफिक रंग बदलता है। तोमरा वास्ते दोसरा हमरा वास्ते दोसरा! जब हम नहीं चलती गाड़ी में चढ़ सकता तब तोम कैसे चढ़ेगा?"

आखिर गाड़ी रोकनी पड़ी। तब गार्ड साहब भी चढ़े और मुगलिया भी।

दूसरा यात्री कहने लगा—भई! गार्ड साहब ने तो ठीक किया था क्योंकि अनाड़ियों के लिये चलती गाड़ी में चढ़ना प्राण देना है। मगर कानून की बात पर मुझे भी एक बात याद आ गयी। एक दफा मैं पचपेड़वा से आ रहा था। उस डब्बे में चार पहाड़ी और एक पुलिस का कांस्टेबिल भी था। जैसे ही गाड़ी 'राप्ती' नदी पार करके बलरामपुर की हद में पहुँची, वैसे ही कान्स्टेबिल साहब ऐंठते हुए उठ खड़े हुए

और पहाड़ियों से पूछा—"तुम्हारी बोतलों में क्या है।" एक पहाड़ी ने जवाब दिया—"दारू है दारू। हमरा देस का बना है। चार आना बोतल मिलता है। ऐसा तुम लोग नहीं बना सकता। तुमरा देस लूटना जानता है। खाली स्पीरिट घोलकर बनाता है। बड़ा खराब और पांच रुपी का एक बोतल देता है। पियेगा?"

कान्स्टेबिल साहब ने डांट बताई–यह बाद को देखा जायेगा। पहले तुम लोगों का खून तो पी लूँ। कच्ची शराब लेकर राप्ती के इस पार आए हो। इतना बड़ा जुर्म! गाड़ी से उतरते ही रस्से में बांध कर मय माल के तुम्हें दारोगाजी के पास ले चलूँगा। अब हमसे कहां भागकर जा सकते हो?"

एक पहाड़ी बोला—"यह क्या बकता है? खाना पीना साथ ले चलो तो जुलुम? जो बीबी साथ लाता तो उसको भी तुमरा कानून जुलुम बोल देता? क्यों? (थूकते हुए) तुमरा कानून थू!"

यह कहकर चारो अपनी-अपनी बोतलें मुँह से लगा कर एक सांस में सब गट कर गये और बोतलों को खिड़की के बाहर फेंककर बोले—"अब किसको पकड़ेगा। अब तो तुमरा कानून पेट में रख लिया। बोलेगा तो तुमको भी बाहर फेंक देगा।"

स्टेशन आते ही कान्स्टेबिल साहब खिसक गये।

गोंडा पहुँचते-पहुँचते नशे में पहाड़ियों ने वह आफत मचाई

कि चारो गिरफ्तार हो गये। दूसरे दिन मजिस्ट्रेट ने उनसे पूछा—"तुम लोगों ने क्या किया ?"

वह बोले—"हमने कुछ नहीं किया। सब तुमरा देस का कानून किया। दारू, बोतल में ले चलो तो जुलुम, पेट में ले चलो तो जुलुम, तुमरा कानून हमको जबरदस्ती ढेर सा दारू पिला दिया। हम क्या करें।"

सब हँस पड़े मगर एक सज्जन गम्भीरता से कहने लगे—"बात हँसी की जरूर है, मगर इसमें सचाई भी बहुत कुछ है। हमारी बहुत सी बुराइयों का कानून जिम्मेदार है।"

"इधर ढिंढोरा पीटा जाता है कि रिश्वत मत दो। उधर बिना रिश्वत के काम ही नहीं चल सकता।"

"तीन बरस तक पटवारी हमारे खेतों पर और किसी का कब्जा लिख दे तो जमीन उसके बाप की हो गयी। इसलिये हर वक्त उसके दिमाग को सही रखना बहुत जरूरी है।"

"जिसकी लाठी उसकी भैंस के कारण जबरदस्तों की जबरदस्तियाँ और बेइमानियाँ भी कितनी बढ़ती जाती हैं, कमजोरों का ही दिल बता सकता है।"

"शिकमी" का कारबार बन्द, हलवाहे बिना जमीन पाये मिल ही नहीं सकते। अगर काश्तकारी वही करे और उतना ही करे जितना वह स्वयं जोत सकता है तब वह अपने लिये मोटा-झोटा पैदा करने के अलावा शहर वालों के लिये महीन अनाज क्यों पैदा करने लगा।

अगर कोई गरीब मरे तो उसके बाल बच्चे अपने दुर्भाग्य से मरें और अमीर मरे तो उसका वंश कानूनी महा-बाभन से चौपट हुआ। क्योंकि उसको तबाह करने के लिये क्रिया-कर्म वाले महा-बाभन तो थे ही अब एक नये ढंग के महाबाभन और पैदा हो गये हैं जिनकी अक्ल अगर ठिकाने न रही तो मृतक के मकान की मालियत पचास हजार लगा ही देंगे। जो कुछ खाने का सहारा मिला था, वह सब मुकदमें बाजी में साफ। दो एक पीढ़ी में मुल्क का मुल्क, कंगाल। बड़प्पन, भलमनसाहत, ईमानदारी, सच्चाई, मुल्क में लाख ढूँढ़ने पर भी नहीं मिल सकती। दूसरे मुल्क अपनी-अपनी कला, योग्यता और हुनर के लिये मशहूर हो रहे हैं और हम मशहूर होने जा रहे हैं—बेइमानी और कंगाली में।

"एक इंडियन पेनल कोड है। जिसमें आज तक कोई हर्फ नहीं लगा सका और एक आजकल का कानून है जो आज यह है तो कल वह। कभी ठीक ही नहीं हो पाता!"

अब तो मुझे भी बोलना पड़ा—"भाई पेनल कोड एक उच्चकोटि के साहित्यिक लार्ड मेकाले का बनाया हुआ है। जब तक वैसे ही साहित्यिकों का सहयोग नहीं लिया जायेगा, तब तक बस गिचपिच होता रहेगा। निष्पक्ष और चिरस्थायी कानून बन नहीं सकता, क्योंकि साहित्यिक मनुष्यता के पुजारी होते हैं; हर बात मनुष्यता की दृष्टि से देखते हैं किसी धर्म, समाज या पार्टी की दृष्टि से नहीं। अपने देश का दुखदर्द

जितना ये समझते हैं, उतना अन्य कोई नहीं। येही देश का सिर ऊँचा करते हैं। यही कारण है कि न जाने कितने राजा-महाराजा और बड़े-बड़े उच्च पदाधिकारी मर गये, परन्तु कालिदास और तुलसीदास आज भी जीवित हैं।"

इतने में पैसेंजर आ गयी। दूधका जला मट्ठा फूँक-फूँक कर पीता है। इसलिये जैसे ही सामने का द्वार खुला, वैसे ही मैं बाबू साहब को घसीटता हुआ उसमें घुस गया।

बाबू साहब चिल्ला उठे—"अरे यह तो इन्टर नहीं है।" मैंने चिढ़ कर कहा—"बला से। यहाँ खड़े होकर पहुँच जाने का सहारा तो है।"

दो मुसाफिरों के यहाँ उतर जाने से बस दो के खड़े होने भर की जगह थी। हम लोग चढ़ आये तीन। रास्ते में एक स्त्री अपने ट्रंक पर बैठी हुई थी। सामने एक बच्चे वाली भी बेंच के किनारे बैठी थी। उसने हम लोगों को घुसते देखते ही बच्चे को गोद से हटा कर अपनी बगल में बिठा लिया ताकि जगह ठसाठस रहे, कहीं खोखलू न दिखाई पड़े।

बाबू साहब की भनभनाहट बढ़ी। लगे बड़बड़ाने—"वाह रे जमाना! स्त्रियाँ अब इतनी बेशर्म हो गयीं कि जनानी गाड़ी छोड़कर मर्दों में घुस कर बैठने लगीं। गाड़ी रुके तो बताता हूँ।"

मैं बच्चे को चुमकारने लगा। वह हँसता हुआ मेरी तरफ लपका। मैंने चट उसे अपनी गोद में उठा लिया। और उसकी

तीन इंच की जगह पर किसी तरह अटक गया और चुटकियां बजाता हुआ मुनुवा-टुनुवा करने लगा।

स्त्री कुछ बोल न सकी, बल्कि अपनी जातीयता के अनुसार ऐसी सिकुड़ी, मानों मेरी पोशाक में कांटे भरे थे। मैं बच्चे को गोद में लिये अब इतमीनान से बैठ गया।

बाबू साहब जल मरे और न जाने क्यों मुझे हिन्दी-अंग्रेजी दोनों में मलिच्छ और गन्दा कहना शुरू कर दिया। शायद अपनी परहेजगारी की सफाई या दुहाई में। वह सामने ही दीवाल से चिपके एक हैन्डिल पर टेक लगाए खड़े थे। इतने में बच्चे का गर्मागर्म फव्वारा जो उनकी तोन्द पर पड़ा तो इस जोर से चौंक कर पीछे हटे कि उनका हाथ मय हैन्डिल के घूम गया और उनके पीछे लघुसिद्धान्त घर का फाटक खुल गया और वह गड़ाप से उसी में विलीन हो गये। खाली उनकी दोनों टांगे आकाश की ओर उठकर फाटक के बाहर पहरा देने लगीं।

मैं उनको उठाने के लिये लपका, मगर बच्चेवाली मुझे खींचते हुए चिल्ला उठी—"हां! हां! अब उनको मत छूइये। अब तो वह सचमुच मलिच्छ हो गये।"

सारा डब्बा हँसी से गूँज उठा। जैसे ही बाबू साहब लाल-लाल आँखें किये किसी तरह बरामद हुए, बक्सवाली स्त्री, जो मुँह में पान भरे होने के कारण अब तक अपनी हँसी रोके हुए थी, एकबारगी खिलखिला उठी। बाबू साहब चिल-

कबरे होकर होली की बहार दिखाने लगे।

उसी समय गाड़ी 'मैजापुर' पहुँची। बाबू साहब अपना झोला-डन्डा-कम्बल लिये उतरकर आगे बगटुट भागे। शायद 'इन्टर' की तलाश में। उनसे कुछ पूछताछ करने की मेरी हिम्मत न पड़ी।

खिड़की के बाहर सिर निकाल कर देखा। वह सचमुच गुस्से में इतने अन्धे हो रहे थे कि एक उतरते हुए मुसाफिर पर फट पड़े। गाली-गलौज के बाद दोनों में शास्त्रार्थ होने लगा। गाड़ी ने सीटी दी। मैं द्वार खोले बाबू साहब, बाबू साहब पुकारता ही रहा। मगर, उन्होंने अपनी बहस के आगे मेरी ओर फूटी आंख से भी ताकना गवारा न किया।

और अब तो वह मुझे देखते ही मुँह फेर लेते हैं। सलाम तक का जवाब नहीं देते। अकेले मिल जाऊँ तो शायद कच्चा चबा जायं। देखा! आफत ढाई इन्टर क्लास की सिटकनी ने और कसर निकाली गयी मुझसे। खेत खाय गदहा और मारा जाय जुलाहा। यह भी अक्लि की बलिहारी है। और क्या कहूँ।

तुम्हारा ही प्रेमी,

मगर जरा बद्दू टाइप का

जी० पी० श्रीवास्तव

मजबूरियाँ

इस पत्र में कहानी लिखने की मुसीबतों का चित्रण करते हुए उन सम्पादकों पर चुटकी ली गई है जो पीर पराई नहीं समझते और चट मंगनी पट ब्याह की तरह खड़ेघाट लेख चाहते हैं। इसी प्रकार का ब्याह भी इसमें रचा गया है जिसमें फंस कर कहानी न लिखने की मजबूरियाँ दिखाते हुए लेखक महोदय को क्षमा माँगनी पड़ी है। और मजा यह कि यह घटना स्वयं ही एक ऐसी मजेदार कहानी बन गई है कि हंसते-हँसते पेट फूला जाता है। सिनेमा कहानियों पर भी अच्छी चुटकी ली गई है।

सम्पादक

वाहजी मेरे मनचले सम्पादकलालजी,

प्रणाम स्थाने सुभान अल्लाह।

आपके क्या कहने हैं। न परसों की खबर न कल की फिक्र, आपका तो बस हर दिन 'आज' ही 'आज' है। हरदम ताजा, नया निराला, चहचहाता, खिलखिलाता और आशाओं से लबालब भरा। तभी तो आपको हरदम हरियाली ही सूझा करती है। कभी गयांक निकालते हैं तो कभी होलिकांक। और तारीफ यह कि इसके लिए जो कुछ भी हो आज ही। आप मस्त हैं तो समझते हैं सारी दुनियाँ मस्त है। ईश्वर करे आपकी यह मस्ती दिन दूनी बढ़ती रहे। मगर भाई जरा पीरपराई का भी तो कुछ खयाल किया कीजिये।

यहां होली क्या आयी साक्षात् परेशानी फट पड़ी। किसीको कुर्ता, किसीको धोती, किसी को कमीज, किसीको साड़ी, किसी को पिचकारी कुछ न कुछ चाहिये ही। पकवान के लिए आटा, तेल, घी की फिक्र अलग। इनाम मांगनेवाले अनगिन्ती और आमदनी का हाल ठन-ठन गोपाल। दिमाग छलनी-छलनी, दिल चिथड़े-चिथड़े उसपर झांय-झांय, कांय-कांय रातो-दिन और लेखनी का हाल क्या बताऊँ पुरानी मोटर से भी बढ़कर अड़ियल। वह तो ढकेलने-ढुकेलने से कभी-कभी चल तो जाती है और यह लाख हुरपेटने से कुनमुनाना तक नहीं जानती।

ऐसी आफत में आपका यह सरकारी हुकुम कि मेरे हालि-फाक्स में जरा मलार तो गा देना फौरन, चटपट, खड़े-खड़े, 'आज' ही—ऐटम बम का भी चचा निकला। ऐसा होश गुम हुआ कि मलार का राग तो गया भूल और बौखलाहट में गाने लगा क्या—'कहाँ राम ! राग ! और कहाँ टें टें।'

अरे भाई कुछ तो ताल-सुर ठीक करने या राग चुनने का मौका दिया होता। मैं ग्रामोफोन तो हूँ नहीं कि उधर आप कुंजी घुमाइये इधर मैं एकदम अलापना शुरू कर दूँ। मेरे पास कोई कहानियों की मशीन भी नहीं कि बटन दबाया और तुरत से कहानी निकल पड़ी। कहानी की जरूरत थी तो कुछ दिनों पहले खबर लेते क्योंकि यहाँ तो न जाने कितने दिन विषय ढूँढ़ने, प्लाट सोचने, शीर्षक चुनने, दिल, लेखनी, शैली और कला को रिझाने में लग जाते हैं तब जाकर कहीं महीनों में एक कहानी तैयार कर पाता हूँ। उसपर यह भी डर रहता है कि समालोचकों की नजर न लग जाय, इसलिए जरा लल्लो-चप्पो के साथ काले धागे से बखिया भी करनी पड़ती है। यों जल्दी में कुछ अनाप-शनाप लिखकर बला टालना अपनी नाक के साथ आपकी भी नाक कटा देना है। यही मजबूरी है।

फिर भी मैंने आपकी आज्ञा का पालन करने में कोई कसर उठा नहीं रखी।

तरावट के लिए दिमाग को डेढ़ पाव चमेली के तेल से

सिंचवाया, दिल को जवान बनने के लिए मकरध्वज भी खाया और ब्राण्डी भी पी।

मगर जैसे ही कागज, कलम, दावात लेकर बैठा वैसे ही आ गये धोबी राम अपना हिसाब कराने। उनसे छुट्टी मिली तो बच्चों ने घेरा कि चलिये बाजार जूता खरीद दीजिये। जितना ही जान बचाने की कोशिश करता उतना ही उनकी ज़िद बढ़ती जाती। यहाँ तक कि कोहराम मच गया। भीतर से भी फटकार पड़ी। झख मारकर बाजार जाना पड़ा।

लौटते समय शाम हो चुकी थी। रास्ते में मिल गये मौलाना हुदहुद। वह ऐसे चिपके कि घर के पास बच्चों का साथ छोड़कर उनका साथ करना पड़ा।

मैंने लाख-लाख कहा मुझे एक कहानी लिखकर सुबह की डाक से जरूर भेज देना है, मगर वह कब माननेवाले। उन्होंने कहा—'वाह! तब तो मेरे साथ तुम्हें सिनेमा चलना बहुत जरूरी है ताकि दिल तो कुछ बदल जाये नहीं तो यह रोनी सूरत लेकर सर पटककर मर जाओगे। अजी दिलबस्तगी अजब चीज है। शायरी के लिए तो पेट्रोल है, पेट्रोल। बिना इसके न दिमाग चलता है और न कलम चलती है। इसी दिलबस्तगी के लिए तो आज मैं अपनी शादी कर रहा हूँ। ठीक १० बजे रात को है। अब एक-एक मिनट मेरे लिए काटना मुश्किल है। इतना वक्त सिवाय सिनेमा के और कहीं कट नहीं सकता। उसके हुस्न की मैं क्या तारीफ

करूँ। सच कहता हूँ दोस्त अल्लाह ने सचमुच उसे अपने हाथ से बनाया है। जब से देखा है हर सांस के साथ एक-एक शेर आप से आप निकलने लगा है और गजलें तो पचीसों लिख डाली।'

शादी के नाम पर मैं सन्नाटे में आ गया।

वह और जोश में आ गये—'अमां बिज्जू की तरह घूरते क्या हो! बाल पक जाने से या दाँत टूट जाने से क्या कोई अपने पेट की भूख बुझाना या मेवा और उम्दा-उम्दा फल खाना छोड़ देता है? तब दिल की भूख बुझाने से परहेज क्यों? उस पर ठहरा मैं शायर, दिल की ही बदौलत तो! तब दिल को मैं कैसे भूखा रहने दे सकता हूँ!'

मेरे मुँह से केवल इतना ही निकला—'और आपकी बेगम साहब?'

वह चिढ़ कर बोले—'अजी उस मलकुल मौत की नानी से दिलबस्तगी की उम्मीद? लाहौल बिलाकूवत! जिसको चार दिन जीना हो उसको दो ही दिन में मार डाले। इसीलिए तो हम लोगों में चार-चार शादियां करना रवां है।'

सिनेमा की भीड़ देखकर मौलाना फिर चहक उठे—'देखो यह गजब की भीड़। जो दाने-दाने को मुहताज हैं वह भी फट पड़े हैं। क्यों महज दिलबस्तगी के ही लिए तो तस्वीरों से दिल की भूख बुझा रहे हैं, क्यों कि दुनिया में उन्हें ये चीजें नसीब नहीं—न घरों में और न किताबों में। जब अल्लाह के

फज़ल से मुझे दिलबस्तगी के लिए हुस्न की जीती-जागती ज़िंदा परी मिल रही है तो मैं इस खुशकिस्मती पर कैसे लात मार सकता हूँ।'

और न जाने वह क्या-क्या बकते रहे और मैं अपने लेखकों के दुर्भाग्य पर आँसू बहा रहा था कि जहाँ उनको सख्त ज़रूरत है और उन्हें चार पैसे मिलने का सहारा भी है वहाँ उनकी कुछ भी पूछ नहीं। फिल्म की भाषा हमारी और उसका कारबार अन्य भाषा-भाषियों के हाथ में! जिन्हें न हमारे साहित्य की खबर और न हमारे लेखकों की। तभी तो कहानी का न सर था न पैर न कला न उद्देश्य न चमत्कार कुछ भी समझ में न आया। हाँ दृश्य सौन्दर्य, आँखों का नचाना, कमर का मटकाना, संगीत की बहार अलबत्ता देखा। मगर नीर्जीव कहानी से सब मुर्दा। तबियत ऊब उठी।

खेल समाप्त होते ही मैं घर की तरफ लपका। मगर मौलाना के चंगुल से छुटकारा न मिल सका उन्होंने कहा—'वाह! मैंने अपनी शादी की बात सिवाय तुम्हारे अब तक किसी से नहीं बताई है ताकि इसका भण्डा फूटने न पावे। जो लोग नाक रगड़ के हार चुके हैं वह खामखाही इसमें रोड़े अटकायेंगे। इसलिए मामला गुपचुप है। ऐसी हालत में जब यह भेद तुमको बता चुका तब जब तक शादी हो नहीं जाती तब तक मैं भला तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ। शायरी के रिश्ते से तुम्हीं अकेले मेरे दिली दोस्त ठहरे। तुम न साथ दोगे तो

फिर और कौन साथ देगा? अब सिर्फ आध घण्टे की बात और है। सवा दस बजे घर पहुँच जाओगे।'

मौलाना ने एक तंग गली के एक कच्चे मकान पर तीन बार खटखटाया, एक बुढ़िया ने द्वार खोला। मौलाना ने बड़े तपाक से कहा—'अम्माजान सलाम।'

उसने इशारों से कहा चुप रहो। और आँखों में आंसू भरकर चुपके-चुपके कहने लगी—'आज बेटा बड़ा गजब हो गया। शेख जी के यहां दिन दहाड़े चोरी हो गई, और वह हम लोगों को फँसाना चाहते हैं। वह कहते हैं इसी की साजिश से चोरी हुई है और यह भी बताते हैं कि चोरों को भागकर इसी के मकान में घुसते हुए हमने खुद अपनी आंख से देखा है। (रोकर) झूठ, झूठ बेटा बिल्कुल झूठ। तुमसे क्या छिपाऊँ बेटा। वह इस तरह मजबूर करके हसीना से अपना निकाह पढ़ाना चाहते हैं। और 'मेहर' नकद देने को भी तैयार हैं। जबान तुम्हें दे चुकी थी। इसलिये कल तक की उनसे मुहलत माँगी है। नहीं तो आज ही वह हम दोनों माँ बेटी को जहन्नुम भेजवा देते। परदेश में बेटा तुम्हारे सिवाय मेरा अपना कोई नहीं। अब तुम्हीं बताओ। क्या करूँ। हाँ (मुझे इशारा करके) यह कौन साहब हैं।

मौलाना ने कहा—मेरे दिली दोस्त हैं। हिन्दू हैं तो क्या? मेरी शादी के गवाह होंगे। हाँ हसीना कहाँ है।'

वह बोली—'आप लोगों के लिये पान लगा रही है।

मेहर के रुपये लाये हों तो जाऊँ चुपके से काजी वकील और गवाह बुला लाऊँ। सब मेरे इन्तजार में बैठे होंगे।'

मौलाना ने दस-पाँच रुपये के बण्डल अपनी जेब से निकालकर सामने रखा। बुढ़िया ने बीस-बीस करके गिना और इस तरह इतमीनान करके कहा—'हाँ पूरे पाँच सौ हैं। और काजी का हक।'

मौलाना बोले - 'वह मेरे पास है।'

इतने में दूसरे कमरे से एक सुरीली आवाज आई—'अरी अम्मा क्या कर रही हो पान तो ले जाओ।'

मौलाना का चेहरा खिल उठा। बड़ी बेसबरी से बोले—'जल्दी से काजी को अब बुलाओ।' बुढ़िया ने कहा—दम के दम में रिक्शे पर बुलाये लाती हूँ। मगर पान तो खा लीजिये। तबतक ये रुपये भी हसीना के हाथ में दे दूँ और पान भी लेती आऊँ। मगर इसमें कोई नोट पाकिस्तानी तो नहीं है?'

मौलाना—'अरी यह क्या कहती हो अम्मी जान! मैं तुमसे भला बेइमानी कर सकता हूँ!'

बुढ़िया द्वार भेड़ती हुई बाहर गयी। और फिर चाय की तश्तरी में दो बीड़े पान, इलायची, तम्बाकू लेकर आयी और बोली—हसीना का दिल आप ने तोड़ दिया। वह कहती है कि खाली कागज ही कागज न जेवर न कपड़ा न लत्ता।'

मौलाना ने चहकते हुए जवाब दिया—'कितना जेवर लेंगी। शादी तो हो जाने दो।'

बुढ़िया ने कहा—'मैं अभी काजी साहब को लाती हूँ। आप लोग जोर से बातें न कीजियेगा। नहीं दुश्मनों को खबर हो गयी तो—' यह कहकर वह दरवाजा भेड़ती हुई फिर कमरे के बाहर गयी।

हम लोग द्वार पर पास ही बैठे थे। ताक पर मिट्टी का दीया टिमटिमा रहा था। मौलाना बिलकुल गिलगिल। कभी शेर पढ़ते थे कभी गजलें गुनगुनाते थे। कभी झूमते थे कभी मारे बेसब्रीसे मुझी से चिपट जाते थे।

मैंने झुंझला कर कहा—'अरे भाई मैं हसीना नहीं हूँ। वह दूसरे कमरे में हैं। इतने बेचैन हो तो वहीं क्यों नहीं चले जाते। मेहर के रुपये दे चुकने पर अब तो वह तुम्हारी हो ही चुकी।'

मैंने इसलिए कहा कि यह किसी तरह मेरे पास से हटे तो मैं घर भागूँ, क्योंकि घर वाले मेरे इतनी देर तक गायब रहने से बुरी तरह परेशान होंगे। दूसरे, मुझे लेख भी लिखना था।

इस प्रस्ताव पर मौलाना मारे खुशी के आपे से बाहर हो गये। चहक उठे—वाह! उस्ताद खूब बताया यह तो अब तक मुझे सूझा ही नहीं। अच्छा तो दोस्त इजाजत है न?'

फिर क्या लपक कर वह दरवाजे पर पहुँचे। मगर हाय! हाय! सब मनसूबों पर पाला पड़ गया। दरवाजा बाहर से बन्द! हम लोग चूहेदानी के चूहे की तरह दीवारों पर सर फोड़ने लगे। मौलाना घण्टों दरवाजे की दरारों से चुपके-चुपके

हसीना-हसीना पुकारते रहे धीरे-धीरे दरवाजा भी भड़भड़ाया। मगर घर में एकदम सन्नाटा।

'अगर किसी ने घर में आग लगायी तो—' सोचते ही रोंगटे खड़े हो गये। पसीनों से नहा उठा। चिराग का तेल भी खतम हो गया। हर साँस में बस ईश्वर की ही गोहार लगा रहा था। सुबह जो कोई मुझे यहाँ देखेगा वह क्या कहेगा। इससे मैं और मरा जा रहा था।

दो बजे रात को किसी ने द्वार खोला और हम लोगों पर टार्च की रोशनी डाली और कड़कती हुई आवाज में कहा—'तुम दोनों मेरे कैदी हो। खैरियत इसी में है एक-एक करके कमरे के बाहर आओ। और सीधे से मेरे साथ थाने चलो।' अब दूसरा बोला। 'हुजूर यही दोनों चोर हैं। इनकी ताक में मैं सरे शाम से ही लगा था। इस वक्त भी चोरी की ही नीयत से जैसे ही यह दोनों इस कमरे में घुसे वैसे ही दरवाजे की कुण्डी चढ़ाकर आपके पास दौड़ा।'

जिसने मेरा हाथ पकड़ रखा था उसके उस हाथ में मैंने जल्दी से पाँच रुपये गिलट वाले जो जूते की खरीदारी से बचे थे ठूँस दिया। दो रुपये जमीन पर गिर पड़े। वह उनको उठाने के लिए झुका। वैसे ही मैं गिरता-पड़ता किसी तरह भाग खड़ा हुआ। चूल्हे में गयी ऐसी दिलबस्तगी और भाड़ में गये मौलाना साहब और उनकी दोस्ती।

घर पर रोना-पीटना जारी था। खाना किसी ने छूआ तक नहीं। बच्चे भी भूखे सो गये। हवास ठिकाने नहीं है। मारे हौलदिली के मरा जा रहा हूँ। अब कहानी क्या लिखूँ अपना सर। ऐसी मजबूरियों में ईश्वर दुश्मन को भी न डाले। अब चाहे क्षमा कीजिये या नाक भौं सिकोड़िये। आपकी खुशी।



चट्टी चोर

इस पत्र में उन सम्पादकों पर बड़ी मीठी चुटकी ली गई है जो लेखकों को पत्र लिखना या उत्तर देना अपना अपमान समझते हैं। और यह नहीं जानते कि वयोवृद्ध अनुभवी लेखकों का सहयोग केवल कभी-कभी पत्रिका भेज देने से नहीं प्राप्त किया जा सकता। पुरस्कार पर भी अच्छा छींटा कसा गया है। इन बातों का समर्थन बुढ़ापे की उपहास जनक तथा स्वाभाविक प्रेम लीला से अत्यन्त ही सुन्दर और रोचक ढंग से कराया गया। इस विलक्षण कहानी से पत्र का आनन्द और प्रभाव बेहद बढ़ गया है।

—सम्पादक

श्रीमती तरंग महारानी,

चरण कमलेषु चूमाचाटी ।

आप आती हैं। मुस्कुराती हैं। झलक दिखलाकर चल देती हैं। समझती हैं कि इसे अपने पीछे दौड़ाने के लिये इतना ही चारा काफी है। मानो मैं भी कोई युवक हूँ जिसे अपनी मस्ती के आगे दीन दुनिया की परवाह नहीं होती। मगर यह खबर नहीं, यहाँ तो बात ही कुछ और है। सङ्कोच और शर्म के मारे आँख मिलाने तक का साहस नहीं। यही धड़का लगा रहता है कि और तो और, आप ही न बुरा मान बैठें।

क्योंकि बुढ़ापे में जब सारी दुनिया बेगानी हो जाती है तब अपना भी दिमाग बल्कि अंग-अंग तक सभी दुश्मन बन जाते हैं। जी चाहता है आपकी एक मीठी चितवन पर भी जान से बलिदान हो जाऊँ। आप भागें मैं झपटूँ। आप कहें नहीं नहीं। मैं कहूँ "नहीं-नहीं नहीं" मगर यह दिमाग कम्बख्त बीच ही में बोल उठता है—"खबरदार! बुरी बात! दुनिया क्या कहेगी।" बस होश गुम। और झपटूँ भी तो किस बिरते पर, जब बिना डण्डे के सहारे के टाँगें कदम उठाने को तरसती हैं? बस कसमसा कर रह जाना पड़ता है। फिर आप की इस ताक-झाँक से लाभ? न आप बोलें न मैं बोलूँ।

अगर आप सचमुच मुझे अपना प्रेमी बनाने में अपना अपमान नहीं समझतीं तो मुँह से कुछ बोलना भी सीखिये ताकि मुझे भी जबान खोलनेका साहस पड़े। नहीं तो आप ऐसी मन-मोहनियों का कोई ठीक नहीं। यहाँ यही ख्याल बना रहता है कि मेरे मुँह से कहीं जरा भी 'वाह !' या 'आह !' निकली तहाँ तो आप आसमान जमीन एक कर देंगी। रोम रोम से यह ढिंडोरा पीटती फिरेंगी—"देखो तो मूये को ! अपनी सूरत और अवस्था नहीं देखता और चला है मुझे छेड़ने।"

क्योंकि यह मुसीबतें मैं खूब झेल चुका हूँ। और अबतक अपने कर्मोंपर हाथ धरकर रो रहा हूँ। एक आप से भी बढ़कर मनमोहनी ने मुझ पर एक मीठी निगाह डाली। मैं पागल हो गया। वह मेरे लिये हूर, परी, देवी, किन्नरी सभी कुछ हो गई। हर क्षण उन्हींका ध्यान, हर सांस में उन्हीं का नाम, सोते में भी उन्हीं की गुहार। क्योंकि बुढ़ापेमें जब कोई बात पूछनेवाला नहीं होता तब अगर कोई उसपर जरा-सी भी कृपादृष्टि डाल दे फिर तो वह उसके लिये ईश्वर से भी बढ़कर हो जाता है। उस पर वह सारी दुनिया न्योछावर कर देता है। आत्मा है तो वही है, प्राण है तो वही है, उसे देखे बिना न दिन को चैन न रात को नींद ! यही हाल मेरा भी हुआ।

उनकी चितवनों में न जाने कौन-सा 'टानिक' था कि मुझमें इतनी शक्ति आ गयी कि उनके लिये आसमान से तारे तोड़

लाने के लिये मैं हरदम तैयार। और लखनी की गति को क्या कहूँ। कोई क्षण दम लेना जानती ही न थी जब देखो तब उन्हीं को पत्र लिखने में मस्त, जिसका न आदि और न अन्त। और एक से एक विलक्षण और अपूर्व। उनकी दिलचस्पी बनाये रखने के लिये नकली दाँत बनवाये और बालों पर भी कालिख पोता। मगर मेरी बनावटी सूरत देखते ही वह झल्ला उठीं—"अरे! आपने यह क्या किया। मुझे तो आप वैसे ही बड़े अच्छे लगते थे।"

मैं और गिलगिल हो गया और अन्त में उनकी आँख बचाकर उनके पद चिह्नों को चूमने लगा।

एक दिन ऐसी ही घुल-घुल कर बातें हो रही थी कि कोई आ गया। वह नंगे पैर दूसरे कमरे में उनसे मिलने चली गयीं।

उनकी चट्टी पर नजर पड़ते ही मुझसे न रह गया। यका-यक स्पर्श सुख के लिए मैं व्याकुल हो उठा। कुछ न सूझा तो उनकी चट्टियों को उठाकर अपने कलेजे से लगा लिया। लालसा ने और टाँग बढ़ाई तो उन्हें अपने कुर्ते के भीतर बनियाइन के नीचे रखकर छाती से लगाया और ऊपर एक तकिया से दबा लिया।

तकिया उठाते ही उसके नीचे रखा हुआ तस्वीरों का एक अलबम भी उठ आया। जो हाथ से फिसलकर गिरा और खुल गया। खुले हुए पृष्ठ पर अपना हस्त-अंकित चित्र देखते

ही मैं मारे खुशी के उछल पड़ा और उसे आँखें फाड़कर देखने लगा। मगर यकायक मेरी आँखें निकल पड़ीं। क्योंकि अब उसकी बगल में उसी तरह का एक बन्दर का भी चित्र दिखाई पड़ा। दोनों में ऐसी समानता थी कि दोनों बिल्कुल एक ही से थे। 'अलबम के हर पृष्ठ में इस प्रकार मैं ही मैं था और मेरे साथ थे: उसी रंग और उसी भाव में बन्दर महाराज भी। उलट-पुलट में किसी सम्पादक का भेजा हुआ उसमें से एक पोस्टकार्ड भी निकल पड़ा।

मैं कसम खाकर कहता हूँ मैं किसी का पत्र स्वप्न में भी नहीं पढ़ता। फिर न जाने कैसे उस पोस्टकार्ड का प्रत्येक अक्षर मेरी आँखों में अंकित हो गया। उसमें इतना ही लिखा था—

'श्रीमती चित्रकारिणी जी,

यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि सौभाग्य से आपको कोई बन्दर मुंहा व्यक्ति मिल गया है, जिसके आधार पर आप मेरे वार्षिक 'बन्दरांक' के लिये बन्दरों के विविध भाव की मुखाकृति का चित्रण कर रही हैं। यह पशु सम्बन्धी साहित्य के लिये अनुपम रत्न होगा। कृपया आप अपने चित्रों को भेज दें।

मैं अपना मुँह दोनों हाथों से छिपाये सर पर पाँव रखकर भागा और घर आते ही अपनी सूरत शीशे में देखने लगा न जाने क्यों शीशा मैंने पटक दिया। दूसरा शीशा लगाया उसकी भी यही गति हुई।

अब मुझे भी विश्वास हो गया कि सचमुच मेरी सूरत वैसी ही है। मगर दिल चहक उठा—"बला से। अगर वैसी न होती तो वह मुझे पूछती ही काहे को। यही तुम्हारा बड़ा सौभाग्य है कि यह सूरत उनके कुछ काम तो आ गई। अगर अपनी सूरत किसी को दिखाने योग्य नहीं समझते हो तो अपनी पूजने वाली लत बनाये रखने के लिये उनकी चट्टी ही को पूजो।

एकायक मैं फिर खिल उठा—देखा तो सचमुच उनकी चट्टी ऐसी वफादार निकली की वह मेरी बनियाइन के भीतर मेरी छाती से चिपकी चली आयी।

एक दिन उनकी चट्टी की पूजा में इतना व्यस्त था कि मुझे पता न मिला कि वह कब मेरे सामने खड़ी पूछ रही हैं कि—'अरे! यह चट्टी यहाँ कैसे?'

मैंने जल्दी से अपने कुर्ते से मुँह ढाककर कहा—"जी हाँ! इसको आपके अलबम वाला बन्दर उठा लाया है।"

इसपर झुंझलाहट का उत्तर सुनाई पड़ा—'चट्टी-चोर कहीं के।'

दिल तो मेरा वह लौटाल न सकीं। मगर बड़ी कृपा की कि मेरी पूजा के लिये बदले में अपनी चट्टी छोड़ गईं जिसको मैं रातोदिन सर आँखों से लगाता हूँ क्योंकि बुढ़ापे के प्रेम का यही असली डिप्लोमा है।

देखा महारानी साहबा, उनकी दिलचस्पी का बिना असली कारण जाने मैं तो तबाह हो गया और ऊपर से चट्टी चोर भी बना। इसलिये आपकी चितवनों का बिना असली मर्म जाने कैसे मैं कुछ कहने या करने का साहस कर सकता हूँ ? आप जानती ही हैं कि दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँक कर पीता है।

माना कि आपको लेखों का शौक है। मगर यह तो नहीं मालूम कि आपको किस भाव के लेख चाहिये। उसपर १) और अधिक की मुझे जरूरत होती है। क्योंकि पुरस्कार के तकाजे के लिये आधे दर्जन पोस्टकार्ड और उसके बाद रजिस्ट्री नोटिस देने के लिये मैं दाम कहाँ से लाऊँगा ?

इन बातों पर प्रकाश डालते हुए अगर आप स्पष्ट रूप से आज्ञा दें तब अलबत्ता आपकी मर्जी के मुताबिक कोई लेख भेजने का साहस करूँ। वह तो उन्होंने खाली चट्टी-चोर ही बनाकर छोड़ दिया मगर आप तो, अगर कहीं लेख बेभाव का हो गया, डाकू लुटेरा और न जाने क्या-क्या बनाकर मुझे एकदम कच्ची फाँसी दे दें तो कोई ताज्जुब नहीं !

नमक की तरकारी

सभी प्रकार की तरकारियों का मजा तो आप लेते ही हैं अब जरा खालिस नमक की तरकारी का भी स्वाद जो पत्नी हृदय की जलन की आँच से इस व्यंगपूर्ण पत्र में तैयार हुई है चखिये, यह पत्र का पत्र है कहानी की कहानी। और तारीफ यह कि लेखक महोदय रचना भी भेज रहे हैं। और रचना न भेजने के लिए क्षमा भी माँग रहे हैं।

इसमें पति पत्नी की प्रकृतियां की वास्तविकता चित्रण करते हुए बगुला भगतों तथा पाखंडनियों पर खूब गहरी चुटकियाँ ली गई है।

—सम्पादक

तबियत ठिकाने हो तो सलाम,

बंदगी, आलागन, पालागन सभी कुछ,

क्योंकि मुझे डर है कि आजकल के साहित्यिक बगुला भगतों की तरह कहीं आप मेरे 'प्रिय शब्द पर अगाड़ी-पिछाड़ी तुड़ाकर भड़क न उठें। और कानों पर हाथ धर के लगें सज्जनता, शिष्टता, पवित्रता और उच्चता की दुहाई मचाने। क्या बताऊँ इन दिनों यह सारे गुण प्रेम तथा प्रेम सम्बन्धित शब्दों के परहेज ही में हैं। इसलिये फूँक-फूँक कर कदम रखना जरूरी है और इसलिए आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा यह "प्रिय" शब्द बिलकुल भावहीन है केवल शिष्टाचार के नाते प्रयोग हुआ है क्योंकि अब 'स्वस्ति श्री' 'सिद्ध श्री' का फैशन नहीं रह गया।

यह परहेजगीरी का रोग पुरुषों से अधिक महिलाओं में इतना बढ़ा-चढ़ा है कि कुछ न पूछिये। हाल ही में दुर्भाग्य से मेरे साले साहब यह शब्द एक महिला को पत्र लिखते हुए प्रयोग कर बैठे। वह थी सर से पैर तक भक्तिन, हज पर जानें वाली बिल्ली से भी बढ़कर। पत्र पाते ही भक्तिन साहिबा एक दम लाल टमाटर हो गईं। फौरन यह नोट जमाकर वह पत्र उन्हें वापस किया कि—"आपको समझना चाहिए कि मैं एक उच्च-कुल की कुमारी हूँ।" और 'प्रिय' शब्द के नीचे लाल रोशनाई से

चिन्ह भी लगा दिया। क्योंकि अपनी पवित्रता का डंका पीटने के लिए उनके पास और कोई सहज उपाय था नहीं।

साले साहब वह पत्र लिये मेरे पास पहुँचे। मैंने उन्हें हँसकर मुबारकबादी दी और अपने को भी। वह अवाक होकर मेरा मुँह ताकने लगे। मैंने कहा—वाह! भाई हो बड़े खुशकिस्मत और तुम्हारे साथ मैं भी! क्योंकि तुम्हारे बदौलत मुझे एक सलहज और नसीब हुई। देखते नहीं इस पत्र को वापस करने वाली तुमसे शादी करना चाहती है तभी तो उसने अपनी उच्चकुलता और अब तक अपने अविवाहिता होने की सूचना दी है। वर्ना इसके लिखने की जरूरत क्या थी।

साले साहब के होश उड़ गये। उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया—"सूचनाके लिए बहुत धन्यवाद। मगर दुर्भाग्यवश एक ही शादी में मेरा सारा दिवाला निकल गया। अब दूसरी की मुसीबत झेलने के लिये न मुझमें दम है, न शौक है और न उम्र ही है। कृपया इसके लिये मुझे क्षमा कीजिए।"

भक्तिन साहब आग बबूला होगईं, मारे गुस्से के उस पत्र को मेरी सलहज साहब को भेज दिया—न जाने क्या-क्या लिखकर एक नोटिस भी दे दिया कि—"खैरियत इसी में है कि आप अपने पति की खबर लीजिये। नहीं तो मैं उनका कोर्ट मार्शल करा दूँगी।"

कोर्ट-मार्शल तो शाले साहब का कम मगर मेरा अच्छी तरह से हो गया क्यों कि डर के मारे उन्होंने सारा दोष यह

कह कर मेरे मत्थे डाल दिया कि 'जीजाजी ने जैसा कहा वैसा मैंने लिख दिया ।"

उस पर वह ठहरे श्रीमतीजी के भोले-भाले भइयाजी । वह भला दोषी कैसे हो सकते थे ? और मैं था साक्षात् उनका पति-देव जो हमेशा अपनी पत्नी की दृष्टि में दोषों का भण्डार और फटकारों का निशाना हुआ करता है।

फैलते-फैलते बात ने बतङ्गड़ का रूप कुछ ऐसा धारण किया कि मेरे तथा सालेराम के घरों में अविश्वास हो गया कि मैं ही सालेराम को सलहज साहब से घृणा करना सिखा-कर उन्हें अपनी दूसरी शादी करने के लिये बहका रहा हूँ। यहीं तक नहीं बल्कि उनके गले मढ़ने के लिये कोई दुलहिन भी चुन रखी है जो कम्बखत ऐसी आफती है कि शादी के पहले ही अपने सौत को पत्र द्वारा कुढ़ा रही है, ताकि वह बेचारी भागकर कूँए ताल में अपना ठिकाना लगाले और उसके दिल का काँटा दूर होकर उसके लिए घर बिलकुल साफ हो जाये।

इस मुसीबत में पड़ने के पहले सम्पादक जी आपके विशेषाँक के लिए "आत्मीयता" पर पत्र रूप में मैं एक लेख लिख रहा था। अपनी परेशानी दूर करने के लिये उसी को फिर सामने रख माथा-पच्ची करने लगा। मगर अब दिमाग कुड़क, बिल्कुल मुर्दा, लेखनी जहाँ की तहाँ।

इतने में बैठक में आहट हुई। सर उठा तो देखा कि दो सुन्दरियाँ खड़ी हैं। उनकी मुस्कुराती हुई सुन्दरता ने दिल में

जरा सी जान फूँक दी। लेखनी भी चहक उठी कि अब लेख पूरा कर दूँगा।

वह लोग संगीत कालिज के लिए चन्दा माँगने आई थीं। हर जगह उन्हें एक ही एक रुपया मिला था। मगर मैंने यह कहते हुये उन्हें चार रुपये दिये कि—"एक रुपया तो चन्दा है और शेष मुर्दा दिल जिला देने के लिए आपकी डाक्टरी फीस है। अब मैं अपना लेख अवश्य पूरा कर सकूँगा।"

जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं लेखक भी हूँ तो उन लोगों की दिलचस्पी बढ़ी। फिर तो घुल-घुल कर बातें होने लगीं। साले साहब भी आ गये। वह भी बातों का आनन्द लेने लगे।

इतने में भजन साले-बहनोई दोनों के लिये वारंट लिये फट पड़ा और बोला—"चलिये भीतर बहुत जरूरी काम है।"

भीतर पहुँचते ही हम दोनों कैद कर लिये गये और भजन को हुक्म मिला—"जाओ बैठक बंद कर दो और जो कोई हो सबको झाड़ू मारकर बाहर निकालो।"

उसके बाद बड़-बड़ाहट शुरू हुई। 'पत्रों के बाद शादी की बात-चीत पक्की करने अब यह चुड़ैलें यहाँ आ पहुँची। एक नहीं दो-दो। क्यों नहीं। गुरू जी के लिये भी तो चाहिए एक।"

उसके जवाब में बिना खाये कचहरी चल देना मुनासिब मालूम हुआ। जेब में लेख भी लेता गया। मगर एक शब्द भी लिख न सका। लौट कर आया तो कोट उतार कर चिन्नो को

दिया कि—'इसका एक बटन टूट गया है बटन लगादो। जेब भी फटी है उसे भी टाँक देना।"

जेब सीते वक्त उसमें से लेख निकला। वह पढ़ा जाने लगा—

कहाँ हो मेरी परम प्यारी आत्मीयता रानी,

बला से कोई ईश्वर को पूजे या अपने स्वार्थ को मगर मेरे लिये तो परम पूजनीय बस एक मात्र तुम्हीं हो। तुम्हीं हृदय के लिये स्वाति की बूँद हो। रोचकताओं की जान हो, जीवन का प्राण हो, तुम्हारे बिना सम्बन्ध, मित्रता और प्रेम सब वैसा ही फीका है जैसे बिना नमक की तरकारी।

तुम्हीं को ढूँढता मर मिटा। अब बताओ तुम्हें कहाँ ढूँढने जाऊँ-

लेख छीन लिया गया, और तुरन्त यह फैसला हो गया—उन लोगों के जाते ही बापरे बाप यह बेचैनी! जरा भी सब्र न हो सका। पत्र लिखने बैठ गये। अब क्या है। सूत्र मिल गया और नाम भी मालूम हो गया! अब चुटकियों में तुम्हारी प्राणप्यारी को ढूँढ निकालती हूँ। तब तुम्हें नमक की तरकारियाँ अच्छी तरह खिलती हूँ। इत्यादि।

इस तरह सम्पादक जी मेरा लेख तो सूत्र बनकर Sherlook Homes से भी बड़े डिडेक्टिव के पास पहुँच गया। इसीलिए लेख के लिये क्षमा कीजिये और मुझे इस मुसीबत से छुटकारा के लिये दुआ कीजिये।

क्षमा प्रार्थी

जी० पी० श्रीवास्तव

मेरी लाट साहबी

इस महत्वपूर्ण पत्र में ऐसी विलक्षण कहानी रची गई है जो साहित्य-संसार, अफ़सरी तथा उच्चपदाधिकारियों की दुनिया के हथकण्डे दिखलाते हुए सम्पादक, प्रकाशक, अस्थाई नौकरी, कानून, शिक्षा, घूसखोरी, और चुनाव पर ऐसी अपूर्व और मनोरञ्जक व्यंग वर्षा करता है जो हमें हंसाते हंसाते लोटा देती है और सुधार के लिये हमारे हृदय को उत्तेजित भी कर देता है।

अधिवासी पर का व्यंग का क्या कहना है मारे हंसी के लोटन कबूतर बना देता है।

—सम्पादक

वाह रे मेरे मस्ताना जोगी।

जय गुरू की !

आप मस्ताने और मैं दीवाना, कहने को साथ तो अच्छा हुआ। मगर साथ दूँ तो किस तरह ? आपकी मस्ती हँसी खुशी की है और मेरी दीवानगी रोने की। दुनिया भी बस हँसना ही जानती है—आँसू पोंछना नहीं। फिर कोई किसी का समझे तो कैसे ? यही रोना है। तभी तो आपकी लेख की माँग पर डेढ़ पाव आँसू छलक पड़े।

× × ×

क्योंकि मैं लिखूँ तो किसके लिये लिखूँ ? कोई पढ़ने वाला भी तो हो। तिलकधारी मेरा नाम देखते ही कानों पर हाथ धरेंगे। पतलून नाक सिकोड़ कर out of date और nonsense कहेगा। और कुर्सी का हाल न पूछिये जो उस पर बैठा, चाहे दो ही दिन के लिये, अफ़लातूं का चचा बन कर एक दम लाट साहब बन गया। फिर मुझे फूटी आँख से भी देखे तो कौन ?

अगर मर-मर कर कुछ लिखूँ भी तो साहित्य संसार में बेकार की दुश्मनी मोल लूँ। एक खुश तो सौ जामे से बाहर। लेख की धज्जियाँ उड़ाने को तैयार ! और जो खुश हुए थे वह भी बाद को पुरस्कार के नाम पर अगिया बैताल।

जहाँ एक लेख लिखा तहाँ दस और लिखने पड़े ताकि उनके संग्रह की एक पुस्तक तो बन जाये। उस पर प्रकाशकों का हाल क्या बताऊँ। जब से स्कूली पुस्तकों की दिन दूनी और रात चौगुनी भरमार होने लगी है तब से उनके मिजाज सातवें आसमान पर हैं। किसी को भी अन्य कोई रचना देखने की फुरसत ही नहीं।

बड़ी मुश्किलों से मेरी एक पुस्तक के लिये एक प्रकाशक मिले तो इस शर्त पर कि मैं अपनी रचना उनकी मर्जी मुताबिक एक दम बदल दूँ। खैर यह भी किया ताकि रचना किसी प्रकार जन्म तो ले, कानी ही होकर सही।

पुरस्कार भी तय हुआ मगर पुस्तक बिकने पर—जिसके मिलने की परलोक में भी आशा करना दीमाग खराब करना है।

बहुत दिनों इन्तजार के बाद पता लगाया तो मालूम हुआ कि कागज का अभाव है। दूसरे साल पता चला कि सरकारी काम की भीड़ है। तीसरे साल खबर मिली कि पुस्तक प्रेस भेजी गई। चौथे साल सन्नाटा। पाँचवें साल एक कार्ड आया कि चित्र बन रहे हैं। छठे साल जब सब्र न हो सका मैं खुद ही प्रकाशक के नगर को रवाना हो गया।

प्रकाशक महोदय कहीं बाहर गये हुए थे। चार दिन तक उनके लौटने की प्रतीक्षा की। पाँचवें दिन उनके एक कर्मचारी

को २) दिये कि भाई मेरी पुस्तक के छपे हुए फर्मे ही दिखा दो—कुछ तो सन्तोष हो जाये।

उसने कहा—'मैं दिखाऊँ कहाँ से? पुस्तक अभी तक छपी ही नहीं और न छपने योग्य ही है।'

मैंने पूछा—'क्यों?'

वह ढूँढढाँढ कर रद्दीखाने से मेरी रचना का पुलिन्दा निकाल लाया। देखते ही आँखों से गंगा यमुना दोनों बह निकली, क्योंकि उसके आधे से भी अधिक अंश दीमक चाट गई थी। साहित्य संसार का यह तमाशा देखकर मैं वहाँ से बद-हवास भागा।

× × ×

और सीधे जाकर 'मस्तानाबाद' में दम लिया। संयोग से मुझे वहाँ एक अफसरी मिल गई। कैसी मिली? मैं खुद ही नहीं जानता। क्योंकि सीढ़ी पर चढ़ने वाले को नीचे के डण्डे दिखाई नहीं पड़ते।

वहाँ कुछ नौकरियों को छोड़कर बाकी सब थीं क्षणिक। न पेनशन न प्राविडेन्ड फन्ड और न उन्नति का कोई आधार। ईमानदारी करो तो बला से—बेईमानी करो तो बला से। जान लड़ा दो या कामचोरी करो कुछ परवाह नहीं। सब धान बाइस पसेरी। वहाँ सिलसिलेवार नम्बर से काम मिलता था। चाहे कर सको, या न कर सको या किसी से कराकर अपना दस्तखत कर दो। तब किसकी जान फालतू थी कि

काम में जी लगावे, योग्यता या अनुभव पैदा करे? वहाँ तो सभी थे मस्ती में चूर, होशहवाश से दूर! सिर्फ फिक्र थी तो यही कि इस चार दिन की चान्दनी में जितना चाहो.... 'हाँ' ताकि बाद को हाथ मलना न पड़े।

जैसा देश वैसा भेष। इसलिये मैंने भी अपने काम का अधिकांश भार अपने चपरासी पर छोड़ दिया। वह ठाठ से मेरी कुर्सी पर बैठ कर अफसरी करता था और शाम को हर जगह विशेष कर भट्टीखाने और ताड़ी खाने में जहाँ नम्बर दस के महानुभावों का जमघट हुआ करता था—'वाह अफसर हो तो ऐसा हो! नीच ऊँच तो क्या, यह अफसर और चपरासी तक में भी कोई भेद नहीं जानते। न विश्वास हो तो कचहरी में आकर देख लो।'

मेरा चपरासी होशियार भी था। जहाँ कोई झंझटी मामला देखता वहाँ चट P.W.D. (बिला तारीख मुलावी) कर देता था। वकील मुवक्किल दोनों खुश। क्योंकि इस बीच में न जाने कैसा कानून आ जाये। गिरगिट की तरह कानून घड़ी-घड़ी रंग बदलता ही है।

यों तो मैं अफसर था हाकिम था सब कुछ था मगर असल में था क्या? कैदी। द्वार पर हर समय दो यमदूत। कहने को अरदली मगर सच पूछिये तो थे पहरेदार। जिनके मारे न कोई आ सके न मैं ही कहीं जा सकूँ और न किसी से खुल के मिल सकूँ। पिंजड़े में दम घुटने लगा। जब कभी बाहर

निकलने की नौबत आती तो वह भी पहरे में—दोनों अरदली खोपड़ी पर सवार। तब क्यों न मुझे लोग इस तरह घूरते जैसे मानों मैं अफ्रीका के जंगल से पकड़ कर आया हूँ। उस पर कदम-कदम पर सलामों की जो झड़ी लगती तो यहाँ गर्दन और हाथ दोनों की कुछ ऐसी नस बिगड़ जाती कि घन्टों मालिस करानी पड़ती थी। एक बार कान में 'लाउडस्पीकर' लगाकर इन सलामों के रहस्य पर जो अनुसन्धान किया तो 'अल्लाह सलाम हुजूर' के बाद दिल की बुदबुदाहट सुनाई पड़ी—'मर कम्बख्त।'

हाकिम होने के नाते मेरी पहुँच बड़े-बड़े हाकिम तक भी थी। सप्ताह में दो-दो बार। मगर घन्टों के इन्तजार के बाद उनके सामने जाने पाता था। और वहाँ जाकर किसी न किसी की चुगली खानी पड़ती थी, वर्ना मैं नालायक।

इनके अलावा वहाँ की इस अफसरी में एक रहस्य का मुझे और पता चला कि मेरे रंगे हुए स्यार हो जाने के कारण स्यार मुझसे अलग भड़कने लगे और शेर भालू अलग। न घर का रहा न घाट का। बस चमगादड़ बना दिन में दफ्तर में तो रात को अपने घर में लटका रहता। इस तरह मैं आदमी से अच्छा खासा चाभी वाला पुतला बन गया—वह भी जापानी क्योंकि यह अफसरी न जाने कब दगा दे जाये।

गुलाब के फूल में काँटे होते ही हैं इसलिये इन बातों की तनिक भी परवाह न की। चपरासी ने नम्बर दस के महानु-

भावों में मेरा धूम मचा ही रखी थी। और इन महानुभावों की कृपा से जनता पर भी मेरी ऐसी धाक जमी कि अगले साल मुझे 'मस्ताना बाद' का लाट साहब बनाने की कनफुस्कियाँ होने लगीं। इसी बीच में हमारे चपरासी महोदय ने एक सनसनीदार मुकदमे का ऐसा विलक्षण फैसला कर दिया कि मेरी लाट साहबी सुरक्षित हो गई।

मुकदमा था धाँधली राम का। उन्होंने दावा किया था कि मेरे घर में घुसकर जबरदस्तसिंह चार हजार का माल असबाब और नकदी के साथ मेरी स्त्री को जबरदस्ती भगा ले गये। जबरदस्त सिंह ने ब्यान दिया कि—"सही है। क्योंकि जब मैंने देखा कि धाँधली राम जबरदस्ती मेरे खेतों पर क़ब्जा करके "अधिवासी" बन गया और अब वह खेत मुझे मिल नहीं सकता तब मैं भी उसी क़ानून की रू में जबरदस्ती कब्जा करके उसकी बीबी और धन दौलत का "अधिकारी" बन बैठा हूँ।"

चपरासी ने कहा—'शाबाश!' और मुक़दमा कर दिया खारिज। काम करे सिपाही और नाम हो सरदार का। जनता में मेरी तूती बोलने लगी। बस झट नौकरी छोड़कर लाट साहबी के चुनाव में खड़ा हो गया।

× × ×

मस्ताना बाद में जनता को अपना लाट साहब चुनने के लिये हर साल अधिकार था। मगर मौजूदा लाट साहब के डर

के मारे किसी को भी उनके मुकाबले में खड़े होने का अब तक साहस नहीं होता था। अब अखाड़े में मुझे ताल ठोंक कर यकायक कूद पड़ते देखकर लाट साहब के भी होश उड़ गये।

मुझे चुनाव से अलग हो जाने के लिये बड़ी-बड़ी कोशिशें की जाने लगीं। यहाँ तक कि एक दिन स्वयं बड़े हाकिम भी मेरे यहाँ आ धमके। मैं अपनी मेज के नीचे दुबक गया और पूरे दो घन्टे तक उन्हें इन्तजार कराने के बाद उसमें से निकला'।

इतनी देर में उनका अधिकार का नशा भी बहुत कुछ कम हो चुका था और दूसरों को इन्तजार कराने का मजा भी मिल गया था। फिर भी रोब से बोले—

'आप को मालूम है कि सरकार आपकी नौकरी तरक्की के साथ मुस्तकिल करना चाहती है। इसलिये आप की भलाई इसी में है कि आप अपना त्यागपत्र वापस लेकर अपनी नौकरी जारी रखिये।'

मुझ पर तो लाट साहबी का भूत ऐसा सवार था कि मैं अपने को सचमुच लाट साहब ही समझ रहा था। इसलिये मैं अपनी कुर्सी पर और अकड़ गया और दूने रोब से पूछा—

"आपको अपनी भी भलाई की कुछ फिक्र है? जरा मुझे यह तो बताइये कि देश का गौरव बढ़ाने वाले आप के नगर में कौन कौन साहित्यकार, फिलासफर और कलाकार हैं। उनकी कलाओं में क्या क्या विशेषतायें हैं। उन्हें सदा अपनी-अपनी कला की उन्नति में लगे रहने के लिये आप क्या करते

हैं और सरकार को इसके लिये आपने कौन कौन से उपाय बताये हैं।"

वह भौंचक होकर मेरा मुँह ताकने लगे।

मैंने अपने स्वर में और भी अधिकार की मात्रा बढ़ा कर कहा—"जब आपको अपने साहित्य और कला का ज्ञान नहीं तब आप में देश भक्ति कब हो सकती है? जिसमें देश भक्ति नहीं वह मेरी लाट साहबी में छोटा से भी छोटा हाकिम होने योग्य नहीं। समझे? बस इससे ज्यादा अपना समय आपको नहीं दे सकता।"

घन्टी तो थी नहीं। इसलिये इतना कहते हुये कांसे के ग्लास में क़लम डाल कर खनखना दिया।

इसके बाद मस्ताना बाद विश्व विद्यालय के वाइसचैन्स-लर साहब मुझे 'डाक्टरेट' की डिग्री देकर 'मस्ताना कालिज' का प्रिन्सिपल बनाने के लिए टपक पड़े।

मैंने उन्हें कन्ने से काटा—"एक तो खूनी उस पर रिश्वत देने का भी जुर्म कर बैठे? यह खबर नहीं कि मैं Shakes-peare, Moliere, और कालीदास का पुजारी हूँ जिनके नाम में कोई अगाड़ी पिछाड़ी नहीं है। तब मैं कैसे D. Lit की दुम लगा कर अपने नाम को कलंकित कर सकता हूँ? देना हो तो इसे मेरी कलम के परखने वाले को दीजिये। मैं तो स्वयं ही कलाकार हूँ।"

वह हकबका कर बोले—"मैं खूनी कैसे?"

मैं—"एक एक विषय पर जब हर साल आप पचास-पचास नई किताबें कोर्स में रखा करेंगे और एक एक पुस्तक पर पचास पचास उसकी कुंजियां लिखी जाया करेंगी तब देश में साहित्य के लिये कागज और प्रकाशक कहाँ मिल सकते हैं ? इस तरह आप साहित्य के साथ शिक्षा का भी खून कर रहे हैं। क्योंकि इतनी किताबों की भरमार में शिक्षा हजम करने की शक्ति कैसे ठीक रह सकती है। तभी तो बी० ए० पास कर लेने पर भी छात्र बेचारा एक वाक्य भी सही लिखने के लिये बगलें झांकता है। आप रेशम के प्रचार का तो दम भरते हैं मगर यह तो बताइये रेशम के कीड़ों के पालने का आपने क्या प्रबंध कर रखा है ?"

वह बोले—"इसके क्या मतलब ?"

मैंने कहा—"शिक्षा और साहित्य एक ही प्राण के दो रूप हैं। जिनके बिना देश देश नहीं बल्कि कूड़ाखाना से भी बदतर है। यह जानते हुए भी आपने साहित्यकारों का भी कभी सहयोग लेने की कोशिश की ? अध्यापक, लेखक, परीक्षक किसी भी रूप में, ताकि उनके भी कुछ आँसू पुछें और वह जीवित रह सकें। याद रखिये मैं अपनी लाटसाहबी में छोटी बड़ी सभी प्रकार की शिक्षा का प्रचार एकदम मुफ्त करने जा रहा हूँ। और हर विषय पर सदैव और सर्वत्र के लिये केवल एक ही एक पुस्तक हुआ करेगी। ताकि सारा देश उच्च शिक्षा का लाभ उठाकर अपना गौरव बढ़ा सके।

शिक्षा की आड़ में मैं किसी प्रकार का व्यापार नहीं देख सकता। न मन्जूर हो तो आप अभी से इस्तीफा लिखिये।"

× × ×

मेरे नाम बड़े जोरों से पर्चा पड़ रहा था। हर पोलिंग पर मेरे नाम की जै जैकार हो रही थी। उसमें यह लेक्चर देकर मैंने और धूम मचा दी।

"भाइयों हमारा मस्तानाबाद खेतिहर प्रदेश है जिसमें मुख्य काम बैलों का है। इसलिये मेरी लाट साहबी में बैलों को वोट देने का अधिकार होगा। और वही अनाज खाने के भी अधिकारी होंगे। भूसा खायेंगे किसान। और बाकी लोग खायेंगे हवा।"

मैं भाग कर हवाई अड्डे पर पहुँचा। क्योंकि मैं दस्तखत तो खूब शानदार और गिचपिच कर लेता था। दावतें खाना भी अच्छी तरह जानता था—लेक्चर भी धड़ाके से दे सकता था। बुनियाद डालना भी मेरे लिये कुछ कठिन न था। सिर्फ एरोप्लेन पर चढ़ने से घबराता था। इसलिये इसकी भी पहले से प्रेक्टिस कर लेना जरूरी था।

मगर एरोप्लेन पर बैठते ही मेरे पेट में हौल-दिली समा गई जैसे ही भर्-र्-र्-र्-र करके उड़ा वैसे ही गजब हो गया। पेट इतने जोर से गड़बड़ाया कि मैं कफन फाड़कर चिल्लाने लगा—"उतारो उतारो।"

भजन मुझे झकझोरते हुए जगाने लगा—"उठिये-उठिये बाबूजी! स्वप्न देख रहे हैं क्या?'

मैं झट लोटा लेकर गुसलखाने दौड़ा।

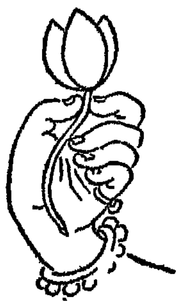
हत्तेरे तकदीर की! आँख खुलते ही सारी मस्ती खाक में मिल गई।

अब आपही बताइये मस्ताना जी, आपके लिये लेख लिखूँ या अपनी लाटसाहबी के लिये कर्म पर हाथ धर कर रोऊँ।

आपका—

'लाटसाहबी' फेल

जी० पी० श्रीवास्तव



जोरू-ट्रेनिंग-कालिज

यह व्यंग-वर्षा से छलकता हुआ हृदय को शब्द-शब्द पर गुद-गुदाने वाला अपने ढंग का निराला पत्र है। इसमें निम्न विषयों पर बड़ी गहरी चुटकियाँ लेते हुए हास्य की प्रबल धारा बहाई गई है, जो हँसाने के साथ-साथ सुधार के लिये भी हृदय को व्यग्र कर देता है—

(१) नई-नई बेतुकी योजनाओं के प्रोपेगैन्डा के बल पर देशको तबाह करने वाले स्वार्थ-हितनेता बनने वालों पर।

(२) ट्रेनिंग के बहाने धन, समय और शक्ति नष्ट करने वालों पर।

(३) नौकरी का प्रलोभन देकर उम्मीदवारों को हैरान करने वालों पर।

(४) बेकार और मुहताजों से एक-एक रुपये के फार्म पर प्रार्थना पत्र मांगने वालों पर।

(५) डाक्टरी सरटिफिकेट के ठेकेदारों पर।

(६) महिलाओं से अपरिचित जनों (जो सम्बन्धी न हो) के गुडकान्डक्ट के सरटिफिकेट मांगने वालों पर।

(७) तलाक पर।

(८) घर तबाह करने वाली घर वालियों पर।

—सम्पादक

अजी वाह जी सम्पादक जी,

आपको लेख की पड़ी है मगर यह खबर नहीं कि मैं हाथ धोकर एक नये आविष्कार के पीछे पड़ा हूँ, क्योंकि मैंने यह अच्छी तरह देख लिया है कि गुण, योग्यता, अनुभव इस जमाने में सब बेकार हैं। जब तक लोगों को यह मालूम नहीं होता कि यह भी कुछ है, तब तक उसकी ओर कोई फूटी आँखों से ताकने वाला भी नहीं। इसलिए, सम्पादकजी, मैं इन दिनों बड़े जोरों से कुछ बनने के चक्कर में हूँ।

मगर कुछ बनने के लिए दो बातें जरूरी हैं, अनोखी सूझ और बेढब प्रोपेगण्डा। अगर आप प्रोपेगण्डा का भार लेलें क्योंकि आप सम्पादक हैं, आपके पत्र का प्रचार सारे भारत में है, तो "सूझ" के लिए चिन्ता न करें। यहाँ वह औंधी खोपड़ी पाई है कि दोपहर में कहें तो तारे दिखला दूँ, बशर्ते कि देखने वालों की आँखों में कुछ दम हो।

तलाक़ का क़ानून पास हो जाने से इस समय 'कुछ' बनने का एक नया सुअवसर भी उत्पन्न हो गया है, क्योंकि यह बात यहाँ के लिये बिलकुल नई है। जो इसे अभी ले उड़ेगा, उसका फिर क्या कहना है, चाँदी ही चाँदी है।

यह सुनहरा सुअवसर मेरे लिए चूकने का नहीं है। इसीलिए इस कानून के पास होते ही "जोरू-हितकारिणी संस्था" की

स्थापना कर दी और उसके आधीन अब "जोरू ट्रेनिंग कालिज" खोजने की तैयारी कर रहा हूँ।

आप ही देख लीजिए कि हर प्रकार के काम यहाँ तक कि 'क, ख, ग, घ' पढ़ाने वाली अध्यापिकाओं तक के लिए 'ट्रेनिंग' है, 'जोरू-गीरी' ऐसी अति कठिन शिक्षा के लिये देश में एक भी कालिज नहीं। बिना इसकी शिक्षा और ट्रेनिंग पाये इस जमाने में जोरू-गीरी का क्या हाल होगा, खासकर जब कि तलाक का कानून पास हो चुका है, यह हमारे किसी भी नेता को नहीं सूझा। इसलिए यदि ईश्वर चाहेगा तो देश में मेरी वह धूम मचेगी कि मैं भी 'कुछ' होकर रहूँगा।

जब 'घर घोड़ा नखखास मोल' हो सकता है और शादी, ब्याह और नौकरी के मामले में यह हो ही रहा है क्योंकि शादी किसी की और तय करने वाले कोई और ही। नौकरी देने वाले बैकुण्ठ पुरी में, जहाँ उम्मीदवार बेचारे का मर-मर कर भी पहुँचना दुर्लभ, तब हमारी "जोरू हितकारिणी संस्था" घर बैठे देशभर की जोरुओं की बागडोर क्यों नहीं ले सकती? इसलिए यह संस्था तथा इसके अन्तर्गत ट्रेनिंग कालिज के लिए मैंने खूब लम्बा चौड़ा 'प्रासपेक्टस' (नियमावली) भी बना रखा है। जिसका ब्यौरा कहाँ तक लिखूँ? फिर आपके प्रोपेगण्डा के आधार के लिए निम्नलिखित कुछ थोड़ी सी जानकारी दे रहा हूँ।

जोरू ट्रेनिंग कालेज में शिक्षा के कुछ विषयः—

१. जंगली, फटहे, मरकहे, लाठीहर, अड़ियल सभी प्रकार के पतियों के वश में करने के उपाय।

२. झाड़ू, चैला, चमचा, बेलना, चप्पल, मूसल का युद्ध-कला में प्रयोग।

३. बिना किसी हथियार के केवल व्यंग-वर्षा द्वारा युद्ध में विजय प्राप्त करने के ढंग।

४. मौन व्रत धारण करके पतिजी की सारी गर्मी खाक में मिला देने की तरकीब।

५. ज्ञानी से ज्ञानी और बुद्धिमान से बुद्धिमान प्रेमी को चुटकियों में उल्लू बना देने का जादू। मगर इस कला का प्रयोग पतिजी के साथ महीने में केवल तनख्वाह मिलने के दिन किया जायगा। शेष दिनों में इसकी प्राइवेट प्रैक्टिस *Private practice* जारी रहनी चाहिए ताकि सबक न भूले तथा सौन्दर्य भी मद्धिम न पड़ने पाये, क्योंकि सौन्दर्य ही प्रेम की जड़ है। बिना इसके न आँखों में मस्ती, न चितवन में शोखी, न गालों पर लाली, न ओठों पर मुस्की, कुछ आती ही नहीं। अच्छी सूरत भी फीकी होकर भद्दी हो जाती है।

सहायक विषय

क—इन बातों के अतिरिक्त परम सुन्दरियों को सिनेमा स्टार बनने के लिये नाचना, गाना और अभिनय करना सिखाया जायेगा।

ख—सुन्दरियों को नर्स और स्टेना-टाइपिस्ट की शिक्षा दी जायेगी।

ग—साधारण श्रेणी वालियों को सम्पादिका और अध्यापिका बनने के लिए तैय्यार किया जायगा, ताकि कोई किसी की मोहताज न रह सकें और वक्त पड़ने पर पतिजी का भी पालन पोषण कर सकें।

❀ ❀ ❀

ट्रेनिंग की डिग्री प्राप्त करके प्रत्येक जोरू या भावी जोरू को हमारी "जोरू हित कारिणी संस्था" के पास अपनी मुस्तकली के लिए १) रुपये के फार्म पर दरखास्त भेजनी पड़ेगी जो संस्था से प्राप्त होगा।

इस दरखास्त के साथ एक डाक्टर का इस बात का सर्टिफिकेट चाहिए जो १६) खर्च करने के बाद आसानी से मिल सकता है कि प्रार्थिनी जीवन भर में एक से अधिक बच्चा उत्पन्न नहीं कर सकती, क्योंकि देश में न कहीं जीविका है, न भोजन, न रहने के लिए मकान ही मिलता है और न किसी में अपने बच्चों को उच्च शिक्षा देने या उनकी शादी ब्याह करने का दम ही है।

दो भद्र पुरुषों के जो सम्बन्धी न हों गुड कण्डक्ट (Good conduct) के सर्टिफिकेट की भी आवश्यकता है जिनकी प्राप्ति में प्रेम कला का ज्ञान बहुत कुछ सहायता दे सकता है।

तीसरे मद में योग्यता की डिग्रियों की भरमार होनी चाहिए जिनसे मालूम हो सके कि अपने पैरों पर खड़े होने की प्रार्थिनी में कितनी शक्ति है।

चौथे मद में अपने प्रेम प्रार्थियों की संख्या उनके हस्ताक्षर सहित चाहिए ताकि तलाक़ होने पर प्रार्थिनी के सुहाग में तनिक भी बाधा न पड़ सके। उसे जोरू बनाने के लिए दस-बीस कैण्डीडेट (Candidate) यानी उम्मीदवार तय्यार रहें।

पाँचवें मद में "जोरू ट्रेनिंग-कॉलिज" का डिप्लोमा अत्यन्त ही आवश्यक है। उसके बिना दरख्वास्त खारिज करदी जायेगी उसके साथ प्रार्थिनी भी जोरू-गीरी से एकदम डिसमिस हो जायेगी।

संस्था द्वारा मुस्तक़िल हो जाने पर प्रार्थिनी को जोरू-गीरी के समस्त अधिकार, जिनमें तलाक देने के भी अधिकार सम्मिलित हैं, प्राप्त हो जायेंगे। और तब वह १४ दिन की छुट्टी (Casual leave) की भी अधिकारिणी हो जायेगी जिसमें वह जहाँ चाहे बिला रोक टोक के जा सकती है; कोई चूँ नहीं कर सकता।

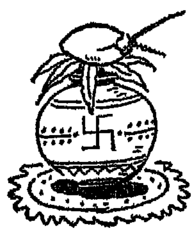
इतने ही से, सम्पादक जी, आप समझ सकते हैं कि मेरा उद्देश्य कितना महत्वपूर्ण है। मुझे आपका बड़ा खयाल है। इसलिए बिश्वास मानिये कि आपके प्रोपेगण्डा की बदौलत जहाँ मैं 'कुछ' हो गया तहाँ मैं आपको भी कुछ न कुछ बना ही दूँगा। न कुछ सही तो अपने ट्रेनिंग कालेज का प्रिंसिपल और

अपनी संस्था का 'चेयरमैन' तो बना ही सकता हूँ बशर्ते कि पब्लिक-सर्विस-कमीशन अपनी टाँग न अड़ा बैठे।

इसलिए आपसे बस अब इतना ही अनुरोध है कि—

"कुछ साथ दो तो पेट भरें माँग खायें हम।
तुम डुगडुगी बजाओ तो बन्दर नचायें हम।"

आप ही का नहीं वरन्
संसार भर की जोरुओं का भी
—सच्चा हितैषी



आदर्श के चक्कर में

'आदर्श' नामक मासिक पत्र का अनोखे ढंग से स्वागत करते हुए इस पत्र में लेखक महोदय ने आदर्शता की झलक भी दिखलाई है, आवश्यकता भी बताई है और इसकी इन दिनों की वास्तविकता की पोल भी खूब खोली है और इतनी सफ़ाई से कि यह बातें आप से आप एक ऐसी अनोखी और अपूर्व कहानी बनकर हमारी सुध-बुध भुला देती है और "पुरुषस्य भाग्यं त्रियाश्चरित्रं" कि विचित्र लीला दिखला कर हमें चकित भी कर देती हैं। शुद्ध प्रेम का लक्ष्य क्या है और किस प्रकार एक बूढ़े और सूखे हुये हृदय में भी प्रेम का सञ्चार हो सकता है इसका मनोवैज्ञानिक चित्रण भी बड़ा ही मजेदार हुआ है। अन्त में 'आदर्श' पत्र को आशीर्वाद देते हुये आदर्श पर लेखक महोदय ने बड़ी ही सुन्दर चुटकी भी लीहै कि तुम मेरे लिये मृगमरीचिका ही (कोरी कल्पना की वस्तु) बने रहो।

—सम्पादक

हलो मिस्टर 'आदर्श'

कसम सोहर की कुङ्कुम-धुम की। तुम खूब टपके और बड़े मौके से टपके। तुम्हारी बड़ी जरूरत थी। कम से कम मे आँसू पोछने के लिये। क्योंकि तुम्हारे ही चक्कर में मैं सार जिन्दगी भर खाक छानता रहा।

तुम जानते ही होगे कि कल्पना तथा कला के संसार मे मुझ ऐसे विचरने वालों के लिये 'आदर्श' ही ध्रुवतारा है जिसकी मूर्ति वे सदा हृदय के भीतर छिपाये रखते हैं। सै जान से पूजते रहते हैं। उसी से तुलना कर करके अपन लेखनी के लिये चरित्रों को ढूँढ़ते और परखते हैं और इसी के चक्कर में पड़कर अपनी जिन्दगी कुढ़ाते हैं और सौ-सौ मुसीबतें में भी पड़ते हैं। मेरी तकदीर में तो यही ठोकर ही खान बदा रहा है क्योंकि जिस-जिसका चाहे स्त्री थी या पुरुष आदर्श समझकर पीछा किया वह निकट पहुँचते ही ऐस मृगमरीचिका निकला कि अक्ल ठिकाने हो गई।

इसी 'आदर्श' की छानबीन में मैं श्रीमान चतुराननज तथा उनकी पत्नी पञ्चमुखीजी के फन्दे में पड़ा। इन लोगो के नाम 'यथा नाम तथा गुण' थे। क्योंकि चतुराननज एक मुँह से पञ्जाबी बोलते थे दूसरे से गुजराती, तीसरे से हिन्दी और चौथे से जहाँ पतलून चढ़ाई कि अंगरेजी व

झड़ी बँध जाती थी। मगर उनका कौन-सा मुँह असली था मैं नहीं बता सकता।

यही हाल पञ्चमुखीजी का भी था। एक मुँह से हास्य की फुलझड़ियाँ छूटती थीं। दूसरे से प्रेम की वर्षा होती थी। तीसरे से गाली-गलौज की नाली फूट निकलती थी। चौथे से एक दम ज्वालामुखी का फव्वारा बमक उठता था तो पाँचवें से जहाँ मौज में आई कि कविता की धारा बहने लगती थी। ईश्वर जाने स्वरचित या चुराई हुई। अगर चोरी की भी रही हो तो भी उनकी जिह्वा पर आकर उस कविता के भाग्य जाग उठते थे। उसमें नई जान और नई सुन्दरता उत्पन्न हो जाती थी।

इन लोगों का लखनऊ स्टेशन के भोजनालय में परिचय प्राप्त होते ही मैं अपने को धन्य समझने लगा। यद्यपि मेरी आदर्श रमणी की मूर्ति के गुणों में गाली-गलौज और ज्वाला-मुखी का कोई उल्लेख नहीं था तथापि अपनी भूल को इस प्रकार सुधारते हुए कि बिना कड़ुआहट के मिठास का वास्तविक आनन्द ही नहीं मैं उनकी रह-रहकर गुप्त मुस्कुराहट भरी छेड़ने वाली कनखियों और चितवनों से पञ्चमुखीजी को रोम-रोम से आदर्श मान लेने के लिये विवश हो बैठा। मैं गोंडा आ रहा था। और उन लोगों को उसी गाड़ी से गोरखपुर जाना था। मगर वे लोग थे फर्स्ट क्लास के मुसाफिर और मैं था दूसरे दर्जे का। थोड़ी ही देर में इतनी घनिष्ठता बढ़

कि मुझे भी फर्स्ट क्लास का टिकट लेना पड़ा और उन लोगों ने भी मेरे यहाँ दो चार दिन ठहरने का प्रोग्राम बनाया।

हम तीन ही आदमी फर्स्ट क्लास में थे। चतुराननजी एक बर्थ पर खर्राटे भरने लगे। पञ्चमुखीजी मेरे ही बर्थपर एक उपन्यास पढ़ रही थीं। और मैं गुमसुम बैठा अपनी आत्मा की फटकारों को सुन रहा था कि—"तू पत्नी वाला, बुढ़ापे के चंगुल में और वह पर नारी। उस पर तुझसे उम्र में ढाई गुना कम, तेरे लिये यह रंगरलियाँ किसी प्रकार न उचित है और न क्षम्य ही है।"

इतने ही में पञ्चमुखीजी एक अंगड़ाई लेकर उठ खड़ी हुईं और मुस्कुराती हुई मेरे सामने खड़े होकर अपनी एक उंगली से मेरे गाल पर ठुनकाती हुई बोलीं—"किस ध्यान में हैं आप ?"

मैं चौंक पड़ा। आत्मा की सारी ग्लानि हवा हो गई। मेरा रूखा हुआ हृदय यकायक लहलहा उठा। इस पतझड़ में मौसिम बहार का स्वप्न देखने लगा। मुझमें एक नयी शक्ति का सञ्चार हुआ। फिर भी आँख मिलाने का साहस न हो सका। मैंने लड़खड़ा कर पूछा—"क्या आप इस बर्थ पर लेटेंगी ?"

और मैं वहाँ से हटकर दूसरे बर्थ पर जाने लगा।

उन्होंने कहा—"नहीं नहीं, आप कष्ट न करें।"

मैं और व्यग्र हो उठा और पूछा—'कहिये क्या बात है ?" वह नाक भौं सिकोड़ कर रह गईं। सौ सौ खुशामदों के बाद जल कर बोलीं।—"आप लेखक और बड़े अनुभवी बनते हैं और चरित्रों का यही आपका ज्ञान है ? बस मालूम हो गया। आपको सदा छिछोरियों ही से पाला पड़ा है। उन्हीं की तरह मुझे भी आप समझते हैं। क्षमा कीजिये मैं आप से बात करना नहीं चाहती।"

मेरी अजीब हालत हो गई ? मैं सोचने लगा कि मुझसे कौन-सा अपराध हो गया।

जब मैं अपने अनजाने अपराध के लिये क्षमा पर क्षमा माँगने लगा तब वह कुछ देर तक कुछ न बोलीं उसके बाद झल्ला कर अपने पतिदेव को जगाने लगीं।

पतिदेवजी अपनी अलसाई आँखें मलमलाते हुए बोले—"आज भाग्य से तुम्हें एक लेखक मिल गये हैं जो तुम्हारे भावों और कलाओं का आदर कर सकते हैं तब उनसे बातें क्यों नहीं करतीं ? मुझे जगाकर नाहक ही तो परेशान करती हो।" वह फिर मुँह लपेट कर पड़ गये।

पद्ममुखीजी बड़बड़ा उठीं—"लेखक नहीं समाज के कोल्हू हैं। जो पवित्र अमर और स्वतन्त्र आत्मा को भी निकृष्ट तथा नाश होने वाले शरीर के समान आयु तथा समाज के आधीन समझता और बनाये रखना चाहता है वह भला लेखक कब हो सकता है। जो आदर्श रमणी तथा छिछोरियों को एक ही

दृष्टि से देखना जानता हो, वह भावों की उच्चता और आत्मा की प्यास को कैसे समझ सकता है। वह क्या जाने कि छिछोरियाँ मरती हैं केवल नाश होने वाले रूप रंग और यौवन पर, अपनी कामनाओं और लोभ पर और आदर्श रमणियाँ बलिदान होती हैं अटल आत्मा के सौन्दर्य्य पर, दूसरों की आहों पर! जिसने आत्मा को पूजना सीखा वही आत्मीयता का मर्म समझ सकता है, उसका दिव्य आनन्द ले सकता है, कला के आदर्श पर पहुँच सकता है और स्वयं ही आदर्श बनकर सारी दुनिया से अपने को पुजवा सकता है। पुरुष हो चाहे स्त्री।"

वाह! वाह! ऐसे अपूर्व और विलक्षण और साथ ही इतने ऊंचे और इतने गहरे विचार सिवाय एक उच्चकोटि के कवित्री के और किसी के हो ही नहीं सकते। मैं तो स्वप्न में भी इसकी कल्पना नहीं कर सकता था। इन्हें सुनते ही मुझे एक बार्गी सौ बोतलों का नशा चढ़ गया। अब तो मुझमें धैर्य्य न रह सका। झट उनके चरणों पर गिरकर यह कहता हुआ कि—"बस आज से तुम्हीं मेरी गुरु और आदर्श हो।" उनके चरणों को सर आँखों से लगाने और चूमने लगा।

× × ×

दो दिनों तक खूब चहल-पहल रही। मियाद बाहर होकर एकदम प्रेम-प्रूफ हो जाने पर भी मैं पञ्चमुखीजी के प्रेम में ऐसा पड़ गया कि मजनू के भी कान काटने लगा।

मेरे रंग-ढंग से पत्नी जी का मुँह फूल गया। घर के लड़कों की निगाहें टेढ़ी हो गईं। नौकर चाकर भी मुझे देख-देख कर मुस्कुराने लगे। दूसरे दिन शाम को यह प्रोग्राम बना कि पञ्चमुखी जी के सम्मान में मैं अपने यहाँ परसों कवि सम्मेलन कर दूँ ताकि उनकी कविताओं का रसास्वादन स्थानीय कविगण भी कर सकें। नोटिसें और निमन्त्रण-कार्ड तत्क्षण लिखकर छपने के लिये भेज दिये गये। जलपान के लिये मिठाई वालों को भी आर्डर दे दिया गया।

उसके दूसरे दिन शाम को नोटिसें और निमन्त्रण बटने लगे। सम्मेलन के लिये बैठक सजाई जाने लगी। इसी की दौड़ धूप में चतुराननजी न जाने कैसे फिसल पड़े कि उनके पैरों में सख्त चोट आ गई। ईश्वर जाने मोच आ गई कि हड्डी टूट गई वे मारे पीड़ा के छटपटाने लगे। इतनी पीड़ा होती थी कि किसी को पैर छूने तक नहीं देते थे। इसीलिये न कोई डाक्टर बुलवाये जा सके और न कोई मोच बैठाने वाला। अपने ही हाथ से आमा हल्दी वगैरह किसी तरह छोप-छापकर रेंड़ की पत्तियों से बाँध लिया ताकि सुबह तक नसें कुछ मुलायम पड़ें तो पैर में हाथ लगाया जा सके।

चतुराननजी इस बात से और परेशान हुए कि इस दुर्घटना के कारण उनके रुकने का प्रोग्राम और बढ़ा। पञ्चमुखी जी भी बहुत परेशान हुईं मगर यह कह कर अपने को सन्तोष देती थीं कि—"उन्हें तकलीफ तो बहुत है मगर ईश्वर

दुख के साथ सुख भी देता है नहीं तो आदमी पागल हो जाये।"

मैंने पूछा—"भला इसमें सुख की कौन सी बात हो सकती है?"

उन्होंने मुस्कुराकर जवाब दिया—"आपकी संगति का सौभाग्य। इसके आनन्द को कोई मेरी आत्मा से पूछे।"

मेरा हृदय बासों उछल पड़ा। मेरे रोम-रोम में एक ऐसी अपूर्व शक्ति का सञ्चार होने लगा जो शायद सैकड़ों घड़े अमृत पीने पर भी उत्पन्न न हो सकती थी।

चतुराननजी की मलहम-पट्टी के बाद पञ्चमुखीजी ने कहा—"कवि लोग अत्यन्त ही भावुक होते हैं। केवल निमन्त्रण से काम न चलेगा। उनके पास स्वयं जाकर कवि सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये प्रार्थना करना भी जरूरी है।"

× × ×

हम लोग साढ़े सात बजे रात को रिक्शे पर कवियों के यहाँ चले। रास्ते में बाजार पड़ा। पञ्चमुखीजी ने कहा—"मैं हर जगह यादगार स्वरूप कुछ न कुछ जरूर खरीदती हूँ। आपकी संगति का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसकी भी याद-गार में मुझे आप अपनी पसन्द से कुछ खरीदवा दीजिये। दाम के लिये कोई चिन्ता नहीं है। मेरे यहाँ लाखों का कारबार होता है और हजारों साथ भी हैं।"

एक जेवर की दूकान पर उन्होंने सात सौ रुपये के नेकलेस की तरफ इशारा करके कहा—"जरा इसे मुझे पहना कर देखिये तो।"

इस प्रकार उस दूकान से वही नेकलेस, दूसरी से ढाई सौ रुपये के हाथों के कड़े, और तीसरी से सवा सौ रुपये की 'इयरिंग' खरीदी गई। और दूकानदारों से कहा गया कि इन चीजों को मेरे मकान पर भिजवा कर दाम ले लेवें।

जब जेवर खरीदे गये तब साड़ियाँ भी लेनी जरूरी थीं। मगर जल्दी में १९८) की एक और ६०) की एक कुल दोही साड़ियाँ पसन्द की जा सकीं। उन्हें भी घर भिजवा दिया गया।

इसके बाद एक कवि जी के यहाँ पहुँचे। वह नहीं मिले। पञ्चमुखीजी की तबियत कुछ ऐसी खट्टी हुई कि उन्होंने झल्ला कर कहा कि—"मारिये गोली कवियों को। चलिये किसी खुले स्थान पर। मेरा दम घुट रहा है।"

हम लोग गांधी पार्क में रिक्शे से उतर कर टहलने और चाँदनी की बहार लूटने लगे।

उनकी एक कविता पर मैं चहक उठा—"धन्य हो देवी धन्य हो।" वह एकदम उबल पड़ीं—" मैं आदर की नहीं भूखी हूँ। मैं आत्मीयता की प्यासी हूँ। मैं आपके मुँह से देवी का शब्द नहीं सुन सकती। कोई भी देवी देवता को शौक से या दिल से नहीं पूजता। जब पूजता है तब विवशता में पड़ कर, डर के

मारे किसी कारणवश और वह भी दूर से। कृपया यह शब्द उसके लिये रख छोड़िये जिसके लिये आपका हृदय नहीं तड़पता। जिसकी निकटता के लिये आपका जी नहीं चाहता। स्त्री तो पुरुष-हृदय के लिये मोहनी है। आकर्षण ही उसका मुख्य गुण और हथियार है। जिसमें यह गुण न हो वह सच पूछिये तो स्त्री ही नहीं बल्कि चूल्हा-फुकनी है। इस गुण में तो वह जादू है कि मुर्दे को भी जिला दे, पत्थर पर भी दूब जमा दे और आग पानी में भी लगा दे।"

मैंने कहा—"वह तो आपने मुझ पर हाथ साफ करके दिखला ही दिया।"

उन्होंने चट अपने एक हाथ से मेरा मुह मुस्कुराहट भरी झुँझलाहट के साथ बन्द करके कहा—"चुप"

हम लोग जब घूम-घामकर साढ़े दस बजे रात को लौटे तब चतुरानन जी ने कराहते हुए बताया कि खरीदे हुए सामान पहुँच गये हैं। मगर दाम के लिये उन लोगों को कल दस बजे दिन को बुलाया है ताकि दिन में उन चीजों की जाँच पड़ताल तो कर ली जावे।

बारह बजे रात तक पञ्चमुखीजी के अपूर्व प्रेमालाप का आनन्द लेता रहा। यकायक उन्हें कल होने वाले 'कविसम्मेलन' का ख्याल आया। बस यह कह कर उठ खड़ी हुईं कि कल सम्मेलन में मैं अपनी कौन-कौन सी कवितायें पढ़ूँ, उनको जरा मेरी कापी से चुन दीजिये। और अपने सूटकेस से कापी

निकालने चलीं। सूटकेस के सामान उलटते-पलटते धड़ाम से मूर्छित होकर गिरीं।

मैंने लपक कर उन्हें उठाया। कुछ देर बाद मुँह पर पानी का छींटा देने से जब होश में आईं तब बोलीं—"हाय ग़ज़ब! क्या करूँ? मैं तो मुँह दिखाने लायक न रही। मेरी कापी तो लखनऊ ही में रह गई।"

मैंने ढाँढ़स देते हुए कहा—"सम्मेलन तो कल शाम को होगा तब तक तो कापी लखनऊ से आ सकती है।"

उन्होंने सर पीट कर कहा—"मगर जाये कौन? वह तो हिल नहीं सकते, और मैं अकेली जा नहीं सकती और न किसी ग़ैर के साथ जा सकती हूँ।"

मेरे मुँह से निकला—"क्या मेरे साथ भी नहीं।"

उनका कुम्हलाया हुआ चेहरा यकायक खिल गया। मारे खुशी के चहक उठीं—"ऐसे मेरे भाग्य कहाँ? आपके साथ तो नर्क भी जाने में अपना सौभाग्य समझूँगी।"

\+ × +

उनके लाख रोकने पर भी मैंने ही दो फ़र्स्ट क्लास के टिकट ख़रीदे। साढ़े तीन बजे रात तक उस डब्बे में एक मुसाफ़िर और था। उसके उतर जाने पर पद्ममुखीजी मेरी गोद में अपना सर रख कर लेट गईं।

मैं उनके बालों से खेल रहा था और वह खेल रही थीं खींचने वाली ज़ंजीर के लटकते हुए हैन्डिल से। यकायक यह

कहते हुए कि—"अरे ! कुछ काट रहा है" वह दन से उठ बैठीं। सहारे के लिये उनका एक हाथ मेरी गर्दन में पड़ा और दूसरा हाथ हैन्डिल पकड़े ही रह गया।

गाड़ी की चाल धीमी पड़ने लगी। वह घबड़ा कर बोलीं—"हाय गज़ब यह क्या हुआ ? मालूम होता है उठने में हैन्डिल पर जोर पड़ गया। अच्छा तुम इधर का दरवाजा खोल दो। मैं सब सम्भाले लेती हूँ।"

उन्होंने झट से अपने हैन्डबैग को उसमें से सामान निकालकर खुले दरवाजे से बाहर फेंक दिया और मुझसे कहा कि—"अब तुम उधर के दरवाजे से कूद जाओ। बाराबंकी नजदीक ही है। वहाँ 'बस' मिलेगी। उसी से लखनऊ जाओ। मेरे मकान का पता यह है। जब तक आओगे नहीं मैं चाय नहीं पीऊँगी।"

उन्होंने एक कागज का चिट मेरे हाथ में थमा दिया।

चाल कितनी ही सुस्त हो फिर भी चलती हुई गाड़ी से किसी भी बूढ़े व्यक्ति का कूदना असम्भव है। मगर प्रेम के नशे में सब कुछ सम्भव हो जाता है। उस पर उनके "तुम" ने तो मुझमें एक नयी जान फूँक दी थी। यही बड़ी बात हुई कि नाक-मुँह नहीं फूटे और न मैं पहिये के नीचे पड़ा।

जैसे ही मैं कूदा वैसे ही उन्होंने इधर का दरवाजा बन्द करके रोना-पीटना शुरू कर दिया। रात के सन्नाटे में उनकी आवाज साफ सुनाई दे रही थी। वह रो-रोकर सभों से यही

कह रही थी—"हाय! मैं लुट गई। मैं सो रही थी। खटपट से आँख खुली तो देखा कि कोई पाखाने से निकल कर मेरा हैन्ड-बैग उठा रहा है और साथ ही जञ्जीर भी खींच रहा है। मेरी घिग्घी बँध गई। गाड़ी की चाल धीमी पड़ते ही वह हैन्डबैग लिये गाड़ी से कूद गया। हाय! उसमें मेरे ७३५) रुपये थे…"

चोर की तलाश उधर हो रही थी और चोर इधर एक झाड़ी में छिपा "तुम" का मजा ले रहा था और उनकी इस अपूर्व सूझ की भी तारीफ कर रहा था। हैन्डबैग के मिलने पर उस दुर्घटना का सबको पक्का विश्वास हो गया और इसके सिवाय और हो ही क्या सकता था?

१५ मिनट बाद गाड़ी फिर चली। मैं भी उसके पीछे गिरता-पड़ता और यह गुनगुनाता हुआ कि—"राम जाने कब होगा सइयाँ जी से सामना"—पिया मिलन को चला।

लखनऊ में 'बस' से उतरते ही मन्सूबों का गट्ठर लादे पञ्चमुखीजी के बताये हुए ठिकाने को ढूँढ निकाला तो दुर्भाग्य से वह मुहल्ले का बम्पुलिस निकला।

कलेजे पर साँप लोट गया। गाड़ी से शाम को घर लौटा। दूकानदार अपना-अपना 'बिल' लिये, मिठाई वाले अपने-अपने थाल लिये और कविगण अपनी-अपनी कवितायें लिये मेरी प्रतीक्षा में मेरे घर की परिक्रमा कर रहे थे। मगर चतुरानन जी का कहीं पता न था। भजन ने बताया कि वह रात ही को

न जाने कब मय सामान के एक दम गायब हो गये। खाली अपने पैर की मलहम-पट्टी अलबत्ता छोड़ गये हैं।

अब आगे का हाल न पूछो मिस्टर 'आदर्श' जिधर निकलता हूँ उधर ही हँसी गूँज उठती है। भाग कर जब घर के अन्दर घुसता हूँ तो पकड़-धकड़ कर मैं बम्बे के नीचे बैठाल दिया जाता हूँ ताकि मेरे दिमाग की गर्मी दूर हो और मेरी नापाकी भी।

अब इस मुसीबत से तुम्हीं मेरा उद्धार करो तो करो। क्योंकि—जिसने दिया है दर्दे दिल, दवा भी दे वही—तब तो कुछ असर भी हो। ईश्वर करे इस कृपा के लिये तुम सचमुच साहित्य गगन में आदर्श के ध्रुवतारा बनकर पथ प्रदर्शन के लिये चमकते रहो। मगर मेरे लिये भाई तुम मृगमरीचिका ही बने रहना। क्योंकि अब मुझे उसी में आनन्द आता है।

तुम्हारे पीछे हाथ धोकर

पड़ा हुआ

जी० पी० श्रीवास्तव

मेरी कसम

इस पत्र की कहानी में इतना मौलिक और विचित्र कथानक का सृजन किया गया है कि लेखक महोदय की सूझ पर दंग हो जाना पड़ता है। दहेज के लालच में ब्याह करने वालों की खूब ही खबर ली गई है जिससे कहानी हास्यमय होते हुए उद्देश्य तथा शिक्षा से और भी चमक उठी है।

—सम्पादक

अपनी भावी बहूरानी के श्वसुर जी,

नमस्कार ! निमन्त्रण के लिये कोटिशः धन्यवाद, जिससे मालूम तो हुआ कि बाप बनते-बनते आपकी ससुर भी बनने की बारी आ गई। ईश्वर आपके इस नये पद की सकल मनोकामनायें पूर्ण करें। इस शुभ अवसर पर दूल्हा-दुलहिन को घड़ी-घड़ी आशीर्वाद देने तथा पग-पगपर आपकी पीठ ठोकने के लिये मेरी आत्मा अपने सम्पूर्ण उत्साह से शुभ कामनाओं का भण्डार लिये सेवा में हाजिर है और हरदम हाजिर रहेगी।

रहा सशरीर पहुँचना यह तो भाई जरा टेढ़ी खीर है। क्योंकि दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँककर पीता है।

बात यह है कि एक शादी में हाल ही में मुझे विवश होकर जाना पड़ा था। ईश्वर न करे किसी दुश्मन को भी ऐसी शादी में जाने की नौबत आवे। रेल में किस तरह ठूँसा गया याद आते ही आज भी पसलियाँ चरमरा उठती हैं। जिसको नींद न आने की बीमारी हो उसे तो रेल पर जरूर ही सफर करना चाहिये। क्योंकि गाड़ी चलते ही न जाने क्या बात है नाक बजने लगती है। अपने इधर-उधर इस खर्राटे से मैं घबड़ा उठा। उस पर यार लोगों की खोपड़ियाँ ताजिया के गुम्बद की तरह मेरे दोनों कन्धे पर गदागद पड़ने लगी। मैं सिकुड़ते सिकुड़ते एक दम हवा निकला हुआ फुटबाल बन

गया। जब सामने वाले ने टाँगें फैलाई तो मैं और कसमसा उठा। मैं सिगरेट नहीं पीता! मगर इस आफत में पीना जरूरी हो गया। उसकी चिनगारियों के प्रताप और मेरी उंगलियों के इधर-उधर बहकते रहने से बन्धन जरा ढीला पड़ा। किसी तरह मर मरकर हम लोग निश्चित स्थान पर पहुँचे। बाहर निकल कर सांस ली। जान में जान आई।

बाराती डेढ़ सौ और टिकट कुल सत्तर। मैं बड़ा खुश कि छटनी में आ जाऊँ। मगर दुर्भाग्य से दूल्हे के पिता जी की दृष्टि मुझ पर पड़ गई। उन्होंने टिकटों की गिनती में मुझे भी गिना कर झट बाहर कर दिया।

टिकटों की कमी किस प्रकार पूरी हुई ईश्वर ही जाने। मगर घन्टों मेंब-मेंब और झांय-झांय के बाद सब के सब फाटक के बाहर हुए।

स्वागत के लिये कुल तीन बैलगाड़ियाँ और दो लद्दू टट्टू देखते ही दूल्हेराम के पिताजी का मिजाज जो टिकटों की गिन्ती में खराब हो चुका था अब बेलगाम होकर एकदम भड़क उठा।

एक साँस में हजारों गालियाँ देते हुए बोले—"हाथी-मोटर बग्गी गई भाड़ में, दूल्हे के लिये पालकी तक भी नहीं और लड़की ब्याहने का हौसला रायसाहब ठाकुर राम के खान्दान में" मगर गुस्से में उनकी जबान कुछ ऐसी बेकाबू हो रही थी कि ठाकुर राम की जगह सुनाई पड़ा 'डाकूराम' जिसे सुनते

ही लढ़ीवान और टट्टू वाले थर्राकर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

मैंने दबी जबान में कहा—"शायद इन त्रुटियों की पूर्ति बारह हजार के तिलक में कर दी गई हो, जो आपको मिला है।"

उन्होंने ऐंठ कर कहा—"मेरे खान्दान में कभी पचीस हजार से कम तिलक नहीं लिया गया है। वह तो न जाने कैसे मैं सिर्फ बारह हजार तिलक और पाँच हजार शादी में लेने को तैयार हो गया। इस नेकी का बदला यह ? मैं भी बिना इसकी कसर निकाले छोड़ने का नहीं। पचीसों हजार पूरा करा लूँगा, तब ब्याह की नौबत आयेगी।"

लढ़िवान और घबड़ा उठे। एक गिड़गिड़ाकर कहने लगा–'अरे! सरकार हीयाँ मोटर बग्गी चलिन नाहीं सकत है। हाथी अलबत्ता काम देत। मुल जमीदारी के साथे हाथी घोड़ा ठाठ-बाट सगरो बिलाय गवा। कहारे पालकी ढोवत रहे तीनों में, जब से कल्लू कहार परधान बनके चौधरी कल्लू सिंह कहलाये लाग, आगी लाग गई। सब कहारन के मिनहा कै दिहिस है कि "खबरदार! पालकी छूयो ना न हरवाही किहो अउर न कोई के बरतन माँज्यो नाहीं तो हजार-हजार रुपिया जरीमाना करब। तब्बो हमरे मालिक पालकी के बहुत ताक किये हैं। अइसे पइहैं जरूर पठइहैं।"

तब तक दूसरा बोला—"अउर पालकी का होई ? दुलहवा तो हइए नाहीं।"

दूल्हेराम सूट बूट में थे।

× × ×

दोनों टट्टुओं पर बाप बेटे चढ़े। एक बैलगाड़ी पर बीबी जान मय अपने साजिन्दों के छाप बैठीं। दूसरी पर बड़े-बड़े अस्बाब लदे और कुछ टट्टू वालों के सर पर भी। तीसरी पर सब बाराती टूट पड़े वह वहीं चरचरा कर ढेर हो गई। फिर तो अपनी अपनी गठरी अपना अपना सर। और अपनी-अपनी टांगों का भरोसा और चार कोस की मञ्जिल।

रास्ते में मिला पानी और बड़ी दूर तक। कहीं फिसलन और कहीं धँसाधो। असबाबों वाली लढ़िया तो सब बराती ढकेल ले गये। मगर बीबी जान की लढ़िया कौन ढकेले? बाराती उस पार। इसलिये उन्हें उतर कर अपने एक मोटे ताजे साजिन्दे पर लदना पड़ा। उनके आगे पीछे टट्टू पर चले दूल्हाराम और उनके पिताजी।

दूल्हे राम को अपने चमचमाते हुए जूते और पतलून के क्रीज की बड़ी फिक्र थी। ज्यों-ज्यों गहराई बढ़ती गई त्यों-त्यों वह अपनी टांगे सीधी उठाते गये। जैसे ही उनके टट्टू ने अपने अगले पैर को अगले किनारे की ऊँचाई पर रखा उसकी पीठ यकायक ढालू हो गई। फिर तो दूल्हे राम अपनी दोनों टांगे फैलाये कलाबाजी खाकर पीछे भच से हो गये। यह

कसरत देखते ही उनके पिता जी अपने टट्टू पर इस जोर से चौंक कर हड़बड़ा उठे कि पता न मिला कि कहाँ गायब हो गये।

अपने आगे पीछे इस छपाक झपाक से साजिन्दे के होश उड़ गये। वह मुड़कर देखने के लिये घूमने लगा। ऊपर बोझ नीचे फिसलन। अपने को सम्हाल न सका। वह भी बीबी जान को लिये हुए पछाड़ खा ही गया।

सबकी कीचड़ भरी खोपड़ियां तो पानी के ऊपर बुल्ल से निकल आई। मगर दूल्हे के पिता जी ऐसा जान पड़ा कि मारे शर्म के मुँह दिखाना ही नहीं चाहते थे। इस परहेजगारी पर सबकी हँसी पर यकायक पानी पड़ गया। बारातियों को फिर पानी में घुसना पड़ा।

राय साहब किसी प्रकार बरामद हुए। मगर बिलकुल अधमरे चेतनाशून्य और पेट फूला हुआ।

घन्टों के बाद जब उनके पेट का पानी निकला और वह होश में आए तब मालूम हुआ कि उनकी कमर भचक गई है। इसी कारण वह पानी में उठ नहीं सके थे।

टट्टुओं का अब फिक्र हुई तो उनका कहीं पता न था। सौभाग्य से एक पालकी आती हुई दिखाई दी। उसी पर पालकी वालों की रोक टोक करने पर भी बड़े मियां लाद दिये गये, और उसी पर दूल्हे का जामाजोड़ा मौर इत्यादि सब रख दिये गये।

पालकी वालों ने यह कहकर पालकी उठाने से एक दम इनकार कर दिया कि पालकी दूल्हे के लिये है उसपर और किसी को नहीं बैठाल सकते।

बड़े मियां कमर भचक जाने से सिर्फ उठ बैठ नहीं सकते थे। मगर जबान की तेजी पर कुछ असर नहीं पड़ा था। मारे गुस्से के उबल पड़े। जितनी भी गालियाँ वह जानते थे सब दोहरा गये। लढ़िबानों ने भी जो पहले ही से सहमें हुए थे पालकी ले चलने को कहा।

एक पालकी वाला बोला—"तो तू हीं दुलहा हो तो तू हीं चलो। गरियावत काहे हो।"

बड़े मियाँ ने किटकिटा कर कहा—"अबे तू समझता क्या है मैं दूल्हा क्या दूल्हे का भी बाप हूँ।"

दूसरे पालकी वाले से न रहा गया। वह अपना भाव उगल ही बैठा—"बस बस हजूर हम जान गयेन। मुल का कहीं उनका जे हाथी खरीदे गये रहा और अस आंधर रहे कि का कही।"

दूल्हे राम के पास एक ही सूट था। इसलिये अब उन्हें चूड़ीदार पाजामा और अचकन पहननी पड़ी। पैदल चल नहीं सकते थे।

इसलिये उनको बीबीजान की लढ़िया पर झकमार के बैठना पड़ा। लढ़ीवान उन्हें देखते ही चहक उठा—"अब

अलबत्ता तू सरंगियाँ जान पड़त हो। मुल जस ठाठ कियो हैं वइसे सरंगियो बजायो।"

दूल्हे राम मारने को झपटे। मगर वह कूदकर भाग खड़ा हुआ। तब एक टट्टू वाले को जिस पर असबाब लदा था अपना बोझ लढ़िया पर रखकर बैलों को हाँकना पड़ा।

साजिन्दे उतार दिये गये। वह लोग हमलोगों के साथ पैदल चले।

× × ×

पालकी आगे निकल गई। लढ़िवान पीछे रह गये और हम दस बजे दिन के चले नीचे कीचड़ से लथपत ऊपर पसीने से शराबोर हाँफते हुए शाम को अपने लक्ष्य पर पहुँचे।

जनवासे के लिये हमलोगों को एक बाग बता दिया गया। एक तो बदली दूसरे शाम का वक्त एक दम अँधियारी छा गई। मेरे पास एक ही झोला था जिसमें एक धोती, दो कुर्ते, एक पतली दरी, एक लुटिया और एक पैकेट बिस्कुट था। एक साफ जगह देखकर अपनी दरी बिछा दी और कमर सीधी करने लगा।

साजिन्दे मुझी से आकर बार-बार पूछने लगे कि—"बीबी-जान की लढ़िया अब तक नहीं आई क्या बात है।"

अन्त में मैंने झल्लाकर जवाब दिया—"मैं क्या जानूँ ? मैं क्या तेरी बीबीजान का ठेकेदार या प्राइवेट सेक्रेटरी हूँ जो मुझसे पूछने आये हो।'

रोशनी का कोई इन्तजाम तो था नहीं उसपर आँधी भी चलने लगी और जान आफत में हो गई। खोपड़ी पर कच्चे-पक्के आम धड़ाधड़ टपकने लगे। हर तरफ 'अरे बाप रे बाप' का शोर गूँज उठा।

यकायक एक तरफ से चिल्लाहट हुई—"अरे बाप रे बाप साँप" अब काटो तो खून नहीं। भगदड़ मच गई। मैं भी भागा। पड़ोस के एक खेत में फ़सल की रखवाली के लिये एक मचान था। मैं उसी पर किसी तरह काँखता हुआ चढ़ गया। वैसे ही मूसलाधार वर्षा शुरू हो गई। बारातियों का हाल पूछने काबिल न रहा। कोई बदहवास होकर बैलों की घारी में घुसा और कोई किसी न किसी के घर में।

यकायक हर तरफ "चोर-चोर, डाकू-डाकू, मारो-मारो पकड़ो। बाँध लो" के शोर से गाँव भर काँप उठा। उसके बाद हृदयविदारक चिल्लाहट शुरू हुई—"हाय! बाप हम चोर नहीं, डाकू नहीं, हम बराती हैं।"

दो घन्टे के बाद पानी निकल गया।

मैंने मचान के छप्पर से गिरने वाले पानी से अपनी लुटिया भर ली थी। उसी से दो बिस्कुटों के साथ पेट की ज्वाला बुझाई।

लगभग ११ बजे बादल छट गये और चाँद निकल आया।

१२ बजे रात को घोड़े पर थानेदार साहब पिस्तौल 'बन्दूक' किरिच से सुसज्जित कई हथियार बन्द सिपाहों और गाँव वालों

के साथ आकर मेरे मचान ही के पास खड़े हुए। मेरे होश उड़ गये कि मामला क्या है।

एक गाँव वाला—"हजूर रुकें नहीं। गाँव में चले चलें। हम लोगों ने बाराती बनकर आये हुए सभी डाकुओं को पकड़ कर बाँध रखा है। उनके आने की पहले ही खबर पहुँच चुकी थी, उसपर पानी ने भी बड़ी मदद की। नहीं तो भला वह पकड़ मिलते? ईश्वर की कृपा से थाना भी नजदीक ही है। इसी से आपको इत्तला भी दे सके—"

थानेदार साहब ने कहा—"ठीक है। खूब किया। मगर थाने के हवालात में इतनी जगह नहीं है कि यह लोग वहाँ रखे जा सकें। इसलिये तुम उन डाकुओं को अपने ही पहरे में रात भर रखो। मदद के लिये चार हथियार बन्द सिपाही यहीं रहेंगे। मगर हाँ उसको तो हाजिर करो जिसने सारा गाँव लुटवाने के लिये अपने यहाँ झूठ-मूठ शादी का ढोंग रच के बारात के बहाने इन डाकुओं को बुलाया है।"

गाँव वाले एक दूसरे का मुँह देखने लगे। उनमें से एक हिचकिचाते हुए कहने लगा—"दोहाई दरोगा जी उनके कसूर नाहीं। उनके धीया फूरे बियाह रहा। मुल राम जाने गाड़ी छूट गवा कि का भवा कि दुलहवे नाहीं आवा तब ओहकर बारात कसस आवे। बस यह डकुवे आपन काररवाई कर गये। लढ़िवान कौनो जतन से भाग के आवा अउर सब का होसियार के दिहिस। वही साइत से हम डकुवन के सरदार के डेरे

लागेन। हम गाँव के परधान हाई। रोजे मुकदमा देखित है। एकर फिकिर जेतिक हमका रहा दूसरे का नाहीं होय सकत है। पारसाल हमरे ननिअउरे अइसे डाका पड़ा रहा। डकुवे बरात साजे आए और लगे बगिया में नाच करावे। गाँव भर नाच देखे में बाभ गवा। वै लूट के चल दिहिन। कौनो घर बाकी नाहीं राखेन। तब्बे तो सरदार राम का पालकी पर देखते चीह्न लीन। और नाहीं पहने रहा मुल सार करिखा पोते रहा जेहमा कोई चीह्न न पावे। तब्यो कहूँ बूढ़ औउर जवान छिप सकत है? बस हम फाट पड़ेन। चट मूहें माँ कपड़ा ठूँस के पालकी में बान्ध दीन। वइसे बीवी जान के लढ़िया दिखाई दीन। ओहपर उनके लखनउवा सरंगियो रहा। लढ़िया का तो अपने हीयाँ हंकाय के दूनो का बन्द कराय दीन जेहमा नाच न होवे पावे अउर पालकी लदाय के हजूर के थाना पर दौड़ेन ...”

प्रधान जी बकबकाते ही रहे। जब तक कई कान्स्टेबिल दुलहिन के बाप को पकड़ लाये। वैसेही यह कहकर कि ले चलो थाने पर और इसे भी हवालात में बन्द कर दो। दारोगा जी ने घोड़े को एड़ लगाई और हवा हो गये।

× × ×

मेरा दम घुटने लगा। एक-एक मिनट काटना पहाड़ हो गया। मैं दम साधे किसी तरह मचान ही पर पड़ा रहा।

तीन बजे रात को पालकी राय साहब को लादे कान्स्टेबिलों

के पहरे में आती हुई दिखाई पड़ी। साथ में प्रधान जी, दुलहिन के बाप और बहुत से गाँव के लोग भी थे।

मैं घबड़ाया कि या ईश्वर अब कौन सी आफत आने वाली है। कसमों पर कसमें खाता हुआ ईश्वर से हर साँस में प्रार्थना करने लगा कि हे परमात्मा किसी तरह मेरा इस मुसीबत से उद्धार करो। कसम खाकर कहता हूँ कि अब मैं किसी भी शादी में जीते जी स्वप्न में भी नहीं जाऊँगा।"

लोगों के चले जाने के बाद मैं चुपके से मचान से उतरा और स्टेशन की तरफ भागा।

ढाई कोस चलने के बाद थकावट के मारे एक पेड़ के सहारे मैं बैठ गया। कुछ झपकी भी आ गई।

आदमियों की बोलचाल से आँख खुली। देखा धूप निकल चुकी है और लगभग सभी बाराती खड़े दम ले रहे हैं और शादी के नाम पर हजारों गालियाँ दे रहे हैं।

उन लोगों से मालूम हुआ कि पालकी वाले कहारों को गाँव में पहुँचते ही जैसे मालूम हुआ कि कल्लू प्रधान गाँव में आये हुए हैं वह लोग पालकी वहीं छोड़कर भाग खड़े हुए। पालकी की खबर पाकर दूल्हा देखने लिये गाँव भर की औरतें पट पड़ीं। बूढ़े राम को देखते ही लगीं छाती पीट-पीट के रोने—"हाय दादा! बारह हजार नगद गिन आये और लाये यह बूढ़ा गदहा।"

औरतें मारे गुस्से के ऐसी दीवानी हो गईं कि उनके मुँह पर अच्छी तरह से तारकोल पोत दिया। बेचारे कमर भचक जाने

के कारण उनके हमले से अपने को बचा न सके। इतने में खैरियत हो गई कि प्रधान जी इन्हें ले जाकर हवालात में बन्द करा आये। नहीं तो उनकी जान न बचती। इसके बाद बाराती पहुँचे। ऐसी दशा में जो उनकी गति होने वाली थी, हुई।

जब हवालात में दोनों समधी इकट्ठा हुए तब गाँव वालों को असलियत मालूम हुई। फिर भी दारोगा जी को विश्वास न हो सका। इसी विश्वास दिलाने ही के लिये कि शादी का ढोंग नहीं किया गया है बल्कि असलियत में शादी है दोनों समधी पहरे में गाँव को भेजे गये।

हवालात ने रायसाहब की रुपये की प्यास कुछ ऐसी बुझा दी कि फिर कोई लेनदेन की बात उनके मुँह से न निकली और शादी होने लगी। तब बेचारे बाराती बन्धन से छूटे और अपना अपना प्राण लेकर भागे।

मैंने कहा—"अच्छा भाई अगर मेरी तरह किसी भी शादीमें न जाने की कसम नहीं खा सकते हो तो कम से कम इसी की कसम खालो कि हम दहेज वाली शादी में भूल कर भी नहीं जायेंगे।

सबने एक जबान से इसकी कसम खाली अब तो भाई आपको विश्वास हुआ कि मैं क्यों नहीं आ सकता हूँ।

दूल्हा दूल्हिन के सौभाग्य के
लिये कोटिशः आशीर्वाद सहित
आपका
जी० पी० श्रीवास्तव

मिया मिट्ठू

इस अपूर्व पत्र में ऐसी विलक्षण कहानी की रचना की गई है जिसके कथानक की विचित्रता पर उत्कण्ठा तथा हास्य दोनों दिल खोलकर अपनी-अपनी बहार दिखाते हैं। इसमें शब्द, वाक्य, शैली तथा घटना सभी के द्वारा हास्य का चमत्कार दिखाते हुऐ मिया मिट्ठुओं की, जिनकी नाक बाहर जितनी ही कटती है उतनी ही घर में अर्थात् स्त्री के सामने पहुँच तेही बढ़ जाती है, इतनी अच्छी खबर ली गई है कि बिना हँसे रहा नहीं जाता।

—सम्पादक

वाह जी मेरे शुभचिन्तक जी,

तुम्हें शुभचिन्तक कहूँ कि आबरू भञ्जक जो तुम अपने हर पत्र में मेरी कलकत्ता यात्रा का हाल पूछा करते हो। अरे! भाई जैसे सब कलकत्ता जाते हैं वैसे मैं भी गया था। चलो बात खतम हुई। मगर जब बात का बतंगड़ बनवाने पर तुले बैठे हो तो फिर सुन ही लो कान खोलकर। आबरू रहे चाहे जाये तुम जानो।

मेरे सुपुत्र 'भइया अकिल बहादुर'* का कहना यह है कि जिसके पैरों में सनीचर और खोपड़ी पर कम्बख्ती सवार हो वह कलकत्ता जाये। जब लड़का किसी काबिल हो जाता है तो बाप को सचमुच अपने को उल्लू समझकर उसी के कहने पर चलना चाहिये। मैंने ऐसा नहीं किया और पड़ गया श्रीमतीजी के चक्कर में।

उनको जैसे ही पता चला कि मैं कलकत्ता के एक साहित्य सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रित हुआ हूँ पीछे पड़ गईं। कहने लगीं कि—"चलो इसी बहाने मैं भी कलकत्ता देख आऊँ, वर्ना कलकत्ता भला स्वप्न में भी काहे को देखने को मिलेगा? क्योंकि वह इतनी दूर है कि वहाँ हम लोगों के लिये जाना मानो विलायत जाना है।"

---

* यह पुस्तक भी हमारे यहाँ से प्रकाशित हुई है।—प्रकाशक

फिर क्या तैयारी हो गई। चट लखनऊ अपने कई सम्बन्धियों को खत लिखा कि भाई लखनऊ स्टेशन पर आ जाना। बहुत दिनों से देखा नहीं है। तुम्हारी वजह से गाड़ी बदलने में भी मदद मिलेगी। श्रीमतीजी के अनुरोध पर बनारस अपने एक साहित्यिक मित्र को भी लिखना पड़ा कि लौटते समय सम्मेलन के दूसरे या तीसरे दिन कलकत्ता से देहरा एक्सप्रेस से रवाना होकर विश्वनाथजी के दर्शन के लिये बनारस उतरना चाहता हूँ।

खरीदारी के लिए लम्बी-चौड़ी फेहरिस्त बनी। सिले-सिलाये कपड़ों के लिये सब बच्चों की नाप लिखी। काफी रुपये आधा आधा बाँट कर हमने और श्रीमती जी ने अपनी अपनी कमर में बाँध लिये और जरूरत भर के लिये पर्स में रखा।

निश्चित दिन हम दोनों रवाना हुए, हमारी गाड़ी पौने बारह बजे दिन को लखनऊ पहुँच गई। कुली ने कहा कि चलिये आपको अभी से उस डब्बे में बैठाल दूँ जो डेढ़ बजे कलकत्ता जाने वाली डाकगाड़ी में जोड़ दिया जाता है।

असबाव के साथ श्रीमती जी को बैठाल कर मैं अपने सम्बन्धियों को ढूढ़ने और साथ ही साथ पानी लाने प्लेट-फार्म पर गया। तब तक कोई साहब नहीं आये थे। ज्यादे देर रुक नहीं सकता था। क्यों कि इधर सुराही का बोझ उधर श्रीमती जी डब्बे में बिलकुल अकेली और एक दम उजाड़-खण्ड में।

इतनी ही देर में जगन्नाथजी के यात्री कहाँ से इतने फट पड़े थे कि डब्बे में अगर श्रीमती जी पहले से मौजूद न होतीं तो मैं उसमें घुस ही नहीं सकता था। सोचा कि प्लेट-फार्म ही पर चल कर डाकगाड़ी का इन्तजार करूँ। उसमें अगर भीड़ भी होगी तो एक दम कलकत्ता तक के मुसाफिर न होंगे कभी तो कुछ साँस मिलेगी। मगर वहाँ कुली कहाँ? दूसरे, मैं शिकंजे में ऐसा कस गया था कि डब्बा जुड़कर गाड़ी चली भी गई और मैं अपने सम्बन्धियों से मिलने के लिये प्लेटफार्म पर झाँक भी न सका।

इस धक्कमधक्का में कोई हाथ न साफ करे इसलिये सारी रात टेंट पकड़े ही बीती। राम राम करके दूसरे दिन दस बजे दिन को हबड़ा पहुँचा।

प्लेटफार्म ही पर लोगों ने घेरना शुरू किया। मैंने समझा सम्मेलन के महापुरुष होंगे। मगर वह निकले होटल वाले। मैं नकेल तुड़ाकर भागा। फिर किसी से बात तक न की क्योंकि सामने ही एक झुण्ड हाथों में फूलों की माला लिये बहुत से उतरते हुए मुसाफिरों का स्वागत कर रहा था। रास्ते में दो एक फुट्टैल भी माला लिये घूम घूमकर मुसाफिरों को बिज्जू की तरह घूर रहे थे। मगर भेड़िया धसान राज्य में एक्का दुक्का की कौन सुनता है? इसलिये मैं भी लपककर उस स्वागतकारिणी झुण्ड में पहुँचा और चट ऊँट की तरह गर्दन बढ़ाकर एक हाथों की माला पहन ली तब जाकर इतमीनान हुआ।

सभी माला वालों की तरह हम दोनों पति पत्नी भी एक मोटर पर 'डिस्पैच' कर दिये गये। हवड़ा का पुल देखते ही होश उड़ गये। दरिया के इस पार से उस पार तक एक ही मेहराब! जिसके नीचे जहाज चले और ऊपर 'बस' 'ट्राम' मोटरों की वह भरमार कि मेरी तो ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की नीचे रह गई। घबड़ाकर श्रीमती जी ने कहा कि जल्दी से आँखें बन्द कर लो नहीं तो 'हार्ट-फेल' हो जायेगा। ईश्वर जाने उन्होंने अपनी आँखें बन्द की या नहीं मगर मेरी आँखों पर तो झट रूमाल लगा दिया।

आँखों पर से पट्टी हटी तो देखा कि मोटर बाप रे बाप! एक बहुत ही ऊंचे मकान के सामने खड़ी है और वैसे ही ऊँचे ऊँचे मकान जिधर देखो उसी तरफ। अब समझ में आया कि यहाँ वाले टोपी क्यों नहीं पहनते!

हम दोनों मय असबाब के एक लिफ्ट पर खड़ा करके आकाश को उछाल दिये गये। खैरियत हो गई कि श्रीमतीजी का सहारा मिल गया नहीं तो दिल इतने जोरों से धक से हुआ था कि अगर 'लिफ्ट' कटघरानुमा न होता तो मैं छटक कर जरूर ही टपक पड़ता।

न जाने किस मंजिल पर लिफ्ट रुका। उस मकान में मानो हजारों कमरे थे। पता ही नहीं मिलता था कि और लोग कहाँ ठहराये गये। कौन थे कहाँ के थे मैं अभी तक जान नहीं सका था। मेरे लिये यह जानना न जानना भी बराबर था क्योंकि

मुद्दतों से साहित्य संसार से विरक्त रहने के कारण मुझे मालूम ही न था कि इन दिनों कौन कौन लेखक और कौन कवि हैं।

चाय जलपान खाना सबका इन्तजाम बड़ा सुन्दर था। सब कमरे में ही मिल जाता था। देख भाल के लिये गैलरी में एक न एक बेरा हर वक्त मौजूद रहता था। कमरे से मिला हुआ गुसलखाना भी था।

बेरा से पूछने पर मालूम हुआ कि यह मकान नहीं होटल है जिसने प्रत्येक मेहमान के दो दिन टिकने और खिलाने के लिये साठ-साठ रुपये पर ठेका ले रखा था। उसी में बीस मील तक सैर सपाटे के लिये टैक्सी का किराया भी शामिल है। मैंने दिल में कहा—"वाह! सम्मेलन वालों ने खूब इन्तजाम किया है। बस कसर इतनी ही है कि इतनी ऊँचाई पर हूँ कि चढ़ने उतरने की सुविधा होते हुए भी कलेजा काँप उठता है और नीचे झाँकने तक की भी हिम्मत नहीं पड़ती।"

यही सोचता रहा कि कोई सम्मेलन के महापुरुष आ जायें और उनसे बात चीत कर लूँ तब एक बार्गी सैर सपाटे के लिये नीचे उतरूँ।

इसी इन्तजार में चिराग जल गये। सात बज गये और आठ बजने की भी नौबत आगई। हालांकि पत्र में सम्मेलन ठीक सात बजे शाम ही से शुरू होने को लिखा गया था। मैं बेचैनी में टहलने लगा। इतने में बेरा ने आकर कहा—"ताड़ा-तड़ी तैयारी करो। बरात द्वार पूजन का वास्ते जाना है।"

मैं हक बका कर बोल उठा—"बारात ! कैसी बारात ? क्या आज सम्मेलन न होगा ?"

वह बारात बारात की रट लगाये रहा और मैं सम्मेलन सम्मेलन की। अन्त में वह घबड़ा कर होटल के बड़े बाबू को पकड़ लाया। वह बंगला भूकने लगे और मैं हिन्दी। न वह मेरी समझें और न मैं उनकी। घन्टों माथा पिच्चि के बाद मैं अपना नाम ठिकाना बताकर उन्हें समझा सका कि मैं साहित्य सम्मेलन में भाग लेने आया हूँ। सम्मेलन का निमन्त्रण ढूंढ ढांढ कर उनके हाथ में दिया और इस सम्मेलन के लिये जो भाषण लिखकर पहले ही से भेज दिया था उसकी प्राप्ति का पत्र भी।

उन्होंने बेरा से कहा—'टेलीफोन-बुक।'

वह किताब में से नम्बर ढूढकर गैलरी के एक किनारे चले गये और टेलीफोन करने लगे। मैं भी धीरे धीरे वहाँ पहुँचा। वह यकायक टेलीफोन का चोंगा मुझे देते हुए झुंझला कर बोले—"शुनो शुनो अपना कान शे शुनो।"

मैंने चोंगा अपने कान में लगाया तो उसमें से आवाज आ रही थी—"हाँ हाँ सचमुच मियाँ मिट्ठू जी तो यहीं मौजूद हैं और इस समय वह अपना भाषण भी पढ़ रहे हैं।"

मेरे हाथ से चोंगा छूट गया क्योंकि सम्मेलन संसार में जहां "चपरचू जी" "भचक्कू जी", "निखट्टू जी" "बजर बट्टू जी" सभी जीजियों के नाम टिमटिमा रहे थे वहाँ मेरा भी

"मियाँ मिट्ठू जी" का नाम जगमगा रहा था। "मियाँ" इसलिये कि मेरी शीन क़ाफ़ दुरुस्त थी। और "मिट्ठू" इसलिये कि मेरी भाषा रसीली थी। न कोई तारीफ करे न सही। मैं क्यों न तारीफ़ करूँ? वर्ना मैं अपना साहित्यिक नाम 'मियाँ मिट्ठू' रखता ही क्यों?

× × × ×

अब तो सब के सब बन्दर की तरह खौंखिया कर मुझपर फट पड़े—"नम्बरी चोर है।" "चारसौ बीसिया है।" "बराती बन के चोरी का वास्ते होटल में घुशा जब पकड़ा गया तब जाली चिट्ठी देके बोलता है हम मियां शाब मिट्ठू जी है। अडर मियाँ शाब हुंआ भाषण देता है। हम इशको पुलिश में देगा।"

मेरी तो अकल ही गुम थी। जवाब क्या देता? ईश्वर ने यही बड़ी कृपा की कि जिस कमरे में श्रीमती जी थीं वह वहां से दूर था।

आखिर मैं भी ताव खा गया। फिर तो मातृ-भाषा जिसमें मैं चहकता हूँ, चाची भाषा जिसमें किताबें लिखती हैं, मामी भाषा जिसमें पतलून बमक उठती है, इन सभों की गर्मागर्म गवड़ चौथ से मैं बड़े बाबू का सत्कार करने लगा ताकि कोई तो उनकी औंधी खोपड़ी में घुस सके। मेरे चीखने चिल्लाने का मतलब सिर्फ इतना ही था कि—"इस थू थू मैं मैं से क्या फ़ायदा? आप को तो आपने टका से मतलब है। दो दिन के साठ रुपये के हिसाब से कल ग्यारह बजे दिन तक के लिये

लीजिये यह तीस रुपये। मैं इसी वक्त आपके होटल को लात मार देता मगर क्या करूँ रात हो जाने से मजबूर हूँ !"

अब तो कलकत्ता में मेरा सांस तक लेना दूभर हो गया। सर पर पाँव रख कर ही भागने में भलाई थी। इसीलिये जब श्रीमती जी ने पूछा कि क्या मामला था, तब सिर खुजाते हुए मुझे रुक रुककर कहना पड़ा—"क्या बताऊँ हम लोग छठें मंजिल पर हैं और लिफ्ट की मशीन तीसरे मंजिल पर बिगड़ गई है। जिसके कारण लिफ्ट तीसरे ही मंजिल तक उतर पाता है, उसके नीचे नहीं। इसलिये जब सम्मेलन वालों को मालूम हुआ कि न वह मुझ तक पहुँच सकते हैं और न मैं ही नीचे उतर सकता हूँ तब बेचारों ने सम्मेलन कल पर टाल दिया है। यही टेलीफोन पर मुझसे कह रहे थे। इसी के साथ उन्होंने यह भी बताया कि मेरे नाम सम्मेलन के माफ़ंत बनारस से इस आशय का तार आया है कि बनारस वालों ने मेरे सम्मान में परसों साहित्य सम्मेलन की योजना की है और वह लोग परसों देहरा एक्सप्रेस से हमारे स्वागत के लिये स्टेशन पर प्रतीक्षा करेंगे। इसलिये अब कल साढ़े आठ बजे रात को यहाँ से चल देना जरूरी हो गया चाहे जिस तरह हो सके।

श्रीमती जी ने पूछा—"मगर यहाँ का सम्मेलन !"

मैंने कहा—"जब मिश्री मिल गई तब गुड़ की फिक्र कौन करे ? यह बंगला प्रान्त है। यहाँ 'हम जाता है' कहो तो वाह वाह "हम जाते हैं" कहो तो वाह वाह और बनारस का क्या कहना

वह तो हिन्दी का केन्द्र है। हमारे साहित्य का जो आदर वहाँ हो सकता है वह अन्य स्थानों में भला कब सम्भव है? यही तो मैं उन लोगों से कह रहा था कि मैं बनारस का सम्मेलन छोड़ नहीं सकता जो खास तौर से मेरे ही सम्मान में हो रहा है। इसलिये जब आप आज अपना सम्मेलन टाल ही रहे हैं तब कल न रखिये। मगर वह मानते ही नहीं तब बताओ मैं क्या करूँ।"

श्रीमती जी ने ठंडी सांस भर कर कहा—"तब कलकत्ता आना बेकार हुआ कुछ घूमने को भी न मिलेगा!"

मैंने कहा—उसके लिये चिन्ता न करो। कल सुबह तक लिफ्ट ठीक हो जायेगी। हम लोग खा पीकर कल साढ़े दस बजे मय असबाब के उतर कर दिन भर के लिये टैक्सी करेंगे। शाम तक टैक्सी पर एक नहीं दो चार कलकत्ता देख सकते हैं। पैदल चलना यहाँ प्राण देना है। इसी तरह खरीदारी भी करते हुए रात को स्टेशन पर खाना भी खायेंगे। फिर साढ़े आठ बजे देहरा एक्सप्रेस से बनारस के लिये रवाना हो जायेंगे।

इस तरह श्रीमती जी को तो समझा दिया मगर अपने को किस तरह समझाऊँ यह समझ में नहीं आ रहा था। मैं बराबर यही सोचता रहा कि मैं यहाँ से हिला तक नहीं फिर मैं सम्मेलन में कैसे अपना भाषण पढ़ने लगा? क्या भगवान् ही तो नहीं मेरा रूप धारण करके वहाँ बैठ गये?

सुबह को साढ़े सात बजे एक सम्पादक जी पहुँचे। लगे कहने कि "जिस समय सम्मेलन में आप की बाबत इस होटल से टेलीफोन गया मैं वहीं था। उसका उत्तर जो उस समय देना उचित था दिया गया। नहीं तो सम्मेलन की कार्यवाही में विघ्न ही नहीं पड़ता बड़ा भारी कलंक भी लग जाता....

मैंने बात काट कर कहा—"और यहाँ जान सांसत में पड़ गई...." वह बीच में बोल उठे—"उसके लिये क्षमा कीजिये और आप भी तो सम्मेलन वालों की आँखों में धूल झोंककर न जाने कैसे यहाँ पहुँच गये। वहाँ सम्मेलन वाले आपको हर ट्रेन से ढूँढ़ते ढूँढ़ते परेशान हो गये। आप शैतान से भी ज्यादा मशहूर हैं। ईश्वर को तो लोग भूल सकते हैं मगर—"

मैंने जल्दी से कहा—"हाँ हाँ समझ गया...." फिर वह बोले—"वही तो आपकी गैरहाजिरी से सम्मेलन की बिलकुल नाक कट गई थी। जनता यही समझती कि सम्मेलन झूठ मूठ विज्ञापन देता है, झूठा है, दगाबाज है ऐसे ही आड़े वक्त मेरे भाई साहब जो यहाँ के एक सिनेमा स्टार हैं, किताबों में आप का फोटो देख कर बोल उठे "कुछ परवाह नहीं अगर सम्मेलन मुझे सौ रुपये फीस देने को तैयार हो तो मैं "मेक अप" द्वारा अपनी सूरत को उस फोटो से बिल्कुल मिलती जुलती बना सकता हूँ। सचमुच उन्होंने मेकअप में वह कमाल दिखलाया कि उसके आगे आपका फोटो भी झेंप गया। वह भी बड़ा अच्छा हुआ क्योंकि फोटो में जैसा आप अच्छा जँचते हैं वैसा—"

मैं झट से बोल उठा—"हाँ हाँ समझ गया कैमरा की दृष्टि बड़ी भलेमानुस होती है।"

अन्त में उन्होंने कहा—"आप की बदौलत भाई साहब को सौ रुपये मिले हैं। इसलिये इस समय भोजन आप हमारे यहाँ करने की कृपा करें। वहीं पर आपके दर्शनार्थ बहुत से लोग आयेंगे। क्योंकि टेलीफोन आने के बाद मैंने सभी को बता दिया था कि आप मेरे यहाँ ठहरे हुए हैं।

मैंने दिल में कहा—"यह खूब रहा। मियां की जूती मियां के सर। सौभाग्य से श्रीमती जी स्नान कर रही थीं इसलिये भंडा फूटने से बाल बाल बच गया। मैंने उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा—"दर्शनाभिलाषियों के लिये तो आप अपने भाई साहब को 'मेक अप' करके बिठाल दीजियेगा। क्योंकि उनके 'मेक अप' के आगे अब यह मुँह दिखाने लायक नहीं रह गया दूसरे श्रीमती जी भी साथ हैं उन्हें कलकत्ता दिखाना है।"

वह बड़े तपाक के साथ बोल उठे—"अहो भाग्य तब तो मेरी मोटर हर वक्त आप लोगों की सेवा में हाजिर रहेगी।"

हम लोग मय असबाब के सम्पादक जी के यहाँ उन्हीं की मोटर पर फट पड़े। सौभाग्य से श्रीमती जी उनके बाल बच्चों से घुल मिल गईं।

खाते पीते बारह बज गये। इस बीच में कितने ही दर्शनाभिलाषियों ने धावा किया सभी मेरी सूरत देखकर चकराते थे और पूछते थे—"अरे आपको क्या हो गया है जो एक

आरगी इतने बदल से गये हैं।" तब झख मारकर कहना पड़ता था कि—"कुछ जुकाम है कुछ समुद्री हवा है और कुछ बंगाल का टोना है जो सूरत ही खाली गड़बड़ा कर रह गई भेड़ बकरी नहीं बन सका यही बड़ी गनीमत हुई।"

इस उत्तर पर सम्पादक जी और उनके भाई साहब लोट-पोट हो जाते थे। अब निमन्त्रणों की जो भरमार होने लगी तो मैं और बौखला गया। सभों से हाथ जोड़कर कहा कि—इतनी आशाओं के पालन करने में शायद कई सप्ताह लग जायेंगे। इसलिये आप सब लोग मिलकर कहीं एक जगह मुझे बस एक प्याली चाय पिला दें तो आप लोगों का भी मान रह जाये और आप लोगों की यह कृपा मेरे पेट के लिये अत्याचार भी न बनने पावे। अन्त में यह तै हुआ कि ठीक डेढ़ बजे मेरी चाय पानी वहाँ के एक बड़े मशहूर होटल में हो। ताकि श्रीमती जी के साथ घूमने का मुझे काफी समय मिल सके। श्रीमती जी ने कहा कि जब दो बजे तक तुम्हें लौट आना है तब तुम अकेले ही चाय पी आओ। मैं यहाँ बच्चों से दिल बहलाऊँगी।

इसलिये मुझे सम्पादक जी की मोटर पर अकेले ही जाना पड़ा।

चाय पीकर जब होटल से निकला तो मोटर गायब। साथियों ने बताया कि सड़क के उस पार थोड़ी दूर पर मोटर का अड्डा है मोटर वहीं रुकी होगी।

सड़क पार करने का मैं किसी प्रकार साहस न कर सका। इसलिये एक जापानी रिक्शे पर मोटर के अड्डे पर पहुँचा। वहाँ सैकड़ों मोटरों का जमघटा देखते ही मेरे छक्के छूट गये। मुझे सब अपनी ही मोटर जान पड़ती थी। न रंग याद न नंबर मालूम न शोफर का नाम जानता था और न उसकी सूरत पहचानता था। क्योंकि जब तक मैं मोटर में था मेरे सामने उसकी खोपड़ी ही थी। शायद वह मेरी सूरत पहचानता हो। इसलिये मैं सभों के सामने जा जाकर अपनी ठुड्डी उठा उठाकर अपनी सूरत दिखाने लगा। मगर किसी कम्बख्त ने उसे देखना तक गवारा न किया। फिर होटल के सामने लौटा। गजब हो गया। साथी भी सब हवा हो गये थे। उस पर मुसीबत यह हुई कि न मैंने सम्पादक जी का नाम और न उनके रहने का ठिकाना ही पूछा था क्योंकि विश्वास था कि उनकी मोटर लौट कर आप ही मुझे उनके घर पहुँचावेगी।

× × × ×

चार बजे तक मैं उस मोटर को ढूँढते ढूँढते मर मिटा तब एक टैक्सी की। मगर बिना ठिकाने के जाऊँ कहाँ? टैक्सी वाले ने पूछा—"कहाँ चलें।" मैंने गड़बड़ा कर उत्तर दिया—"उस सड़क पर जिसकी दोनों तरफ खूब बड़े बड़े मकान हैं।"

वह सर घुमा कर मुझे घूरने लगा। तब तक मैं बोल उठा—"अच्छा इस सड़क पर चलो।" लगभग एक मील चलने के बाद कहा—"फिर वहीं लौटो" इस तरह जितनी भी

सड़कें उस होटल तक जाती थीं सब पर मील-मील भर तक गया मगर सम्पादकजी के ऐसा मकान कहीं भी दिखाई न पड़ा। टैक्सी वाला इस चक्कर घिन्नी से घबड़ा उठा। और उससे ज्यादा घबड़ाया हुआ था मैं। इसी घबड़ाहट में मैंने उससे पूछा—"खोये हुए आदमियों के लिए यहाँ कोई कांजी हाउस है?" ताकि मैं वहाँ जाकर अपने को भर्ती करा लूँ। और वहाँ जिसे छुड़ाना हो मुझे छुड़ा ले जाये! मगर मेरे इस प्रश्न पर टैक्सी वाले की आँखें और निकल पड़ी।

सम्पादकजी ने अपना परिचय देते हुए अपनी पत्रिका का नाम कुछ बताया था मगर इस परेशानी में वह भी याद नहीं आ रहा था कि उसी के सहारे उनके निवास स्थान का पता लगाऊँ।

उधर टैक्सी वाला मुझ से कुछ ऐसा भयभीत हो रहा था कि मुझ से पिंड छुड़ाने के लिये बार बार पूछने लगा—"उत-रेगा कहाँ बाबा?" आखिर झल्ला कर मुझे कहना पड़ा—"भाई तुम मुझे वहीं उतार दो जहाँ चढ़ाया था।"

मैंने उसे दस रुपये का नोट दिया यह समझ कर की वह अपना वाजबी किराया लेकर बाकी हमें लौटा देगा। मगर वह "थैंक्यू सर" कह कर सलाम झाड़ता हुआ सर से चलता बना और मैं अपना मुँह लेकर रह गया।

मैं सड़क के किनारे रेंगता हुआ दिमाग को धुन रहा था कि या ईश्वर अब क्या करूँ। शाम हो चली। एकाएक एक ट्राम मेरे पास ही आकर रुकी। मैं बदहवास होकर उसी में

घुस गया। इसी तरह् कभी बस पर बैठता कभी ट्राम पर सारा कलकत्ता छान मारा। खाली असबाब ही का मामला होता तो कोई बात न थी मगर यहाँ तो श्रीमतीजी के ख्याल से मैं एकदम पागल हो रहा था जब मेरा यह हाल है तब उनकी क्या दशा होगी जहाँ न कोई अपना, न जान-पहचान। सोचते ही प्राण अपने डूबने लगते थे। इतने में ही हबड़ा का पुल दिखाई पड़ा और स्टेशन पर "बस" रुकी।

प्लेटफार्म का टिकट लेकर प्लेटफार्म पर ही रात काटने की ठानी। टहलते-टहलते सोच रहा था कि सुबह् हो तो किसी स्थानीय पत्र में अपनी और श्रीमतीजी की हुलिया छपवा दूँ और दोनों को मिला देने वाले के लिये दस रुपये का इनाम भी रख दूँ। क्यों कि इससे ज्यादा की गुञ्जाइस बजट में न थी। इतने में देखता क्या हूँ कि सम्पादकजी के बाल बच्चों के साथ श्रीमतीजी कुली पर असबाब लदाये चली आ रहीं हैं।

मारे खुशी के मैं एकदम आपे से बाहर हो गया। श्रीमती-जी भी बदहवास थीं। मुझे देखते ही उनके चेहरे पर खुशी और गुस्सा का कुछ ऐसा गड़बड़ झाला मच गया कि मेरी हक्की-बक्की बंद हो गई। किसी तरह लड़खड़ाते हुए इतना कहने का साहस कर सका—"क्या बताऊँ इस चाय पानी में सम्मेलन वाले भी थे। उन्हें जैसे ही मालूम हुआ कि मैं रुक नहीं सकता इसी गाड़ी से बनारस जा रहा हूँ वैसे ही उन लोगों ने मुझे झाँ सा पट्टी देकर वहीं एक कमरे में बन्द कर

दिया। अभी जैसे ही सम्मेलन में ले जाने के लिए निकाला वैसे ही मैं जान पर खेल कर सबको ढकेलता हुआ भाग खड़ा हुआ। देर इतनी हो गई थी कि सीधे यहाँ आने के और कोई चारा न था। मुझे विश्वास था कि तुम वक्त पर यहाँ जरूर आओगी।

सम्पादक जी के बड़े लड़के ने कहा—"हाँ-हाँ माता जी (अर्थात् मेरी श्रीमती जी) सात ही बजे से कहने लगीं कि अब आप सीधे स्टेशन ही जायेंगे। गाड़ी छोड़ नहीं सकते। किसी प्रकार जब रुक न सकीं तो इन्हें हम लोगों को स्टेशन पहुँचाना पड़ा। पिता जी ने नमस्कार कहा है और यह पत्रिका दी है। और कहा है कि कभी-कभी इसपर भी कृपा किया करें।

जब गाड़ी चली तो श्रीमती जी बस इतना ही बोलीं-"कान पकड़ती हूँ तुम्हारे साथ अब कहीं भी नहीं जाऊँगी और मुँह फेर कर बैठ गईं।

यह तो बड़ी खैरियत हो गई कि मेरे मित्र की बदौलत बनारस में मेरा स्वप्न सच निकल गया। जिससे मेरा मुँह कुछ दिखाने लायक हो गया और मैं ठाठ से श्रीमती जी को गंगा स्नान और विश्वनाथ जी का दर्शन करा सका। नहीं तो कानून तलाक़ का सबसे पहला शिकार मैं ही होता।

लो अब तो तुम्हारा पेट भरा मेरे शुभचिंतक जी चाहे इसकी बदहज़मी मुझी को भुगतनी पड़े तुम्हारी बला से।

तुम्हारा वही-

मियाँ मिठ्ठू

चाची भाषा का 'काला धागा'

पहली नवम्बर १९५५ को हास्यरसावतार श्री बेढब जी का अभिनन्दन उनकी साठवीं वर्ष गांठ के शुभ अवसर पर 'प्रसाद परिषद्' काशी तथा अन्य संस्थाओं द्वारा किया गया। उस शुभ अवसर पर लेखक महोदय ने अपने दोनों पत्रों द्वारा जो एक दूसरे से सम्बन्धित हैं अपने स्नेहपूर्ण सुस्मरण, बधाई और शुभ कामनाओं से उनका सत्कार किया है।

शुभ कामनाओं में भी लेखक महोदय की विलक्षण मौलिकता अपना चमत्कार दिखाने से नहीं चूकी है। चुटकी बजाती हुई ऐसे वयोवृद्ध लेखकों का वास्तविक सम्मान करने के लिये देश तथा सरकार का बड़े सुन्दर ढंग से ध्यान आकर्षित कर रही है।

लेखक महोदय ने इस शुभ अवसर पर "बेढबजी" के कर कमलों में कुदृष्टि से बचने के लिये जो 'काला धागा' बान्धा है उसकी विचित्रता, मौलिकता, और अपूर्वता का क्या कहना है।

वह साहित्य तथा व्यंग की दृष्टि में कितना अनमोल और अनुपम हुआ है पाठक स्वयं ही समझ लेंगे। उसका प्रत्येक शब्द मानों जादू से भरा हुआ है। पढ़ने में जितना ही सरल है आशय में उतना ही गूढ़ और गम्भीर। यह पत्र इतने सुंदर ढंग

में लिखा गया है कि इन दिनों 'हास्य-साहित्य' पर नासमझी में जितनी भी बोलियाँ झाड़ी जाती हैं उन सभों की पोल खुल गई है। इसमें सबसे बड़ी खूबी यह है कि प्रत्येक आक्षेप का उत्तर दृष्टान्त के साथ है।

इसे लिखकर लेखक महोदय ने हास्य-साहित्य का उद्धार नहीं किया है वरन् उसका वास्तविक आदर करने के लिये दृष्टि भी खोल दी है जिससे उसे उन्नति के लिये बराबर उत्साह मिलता रहे।

—सम्पादक

हास्यरसावतार श्रीमान बेढब बनारसी जी

को शुभ सेवा में मेरी शुभ कामनायें ।

आज के दिन का भला क्या कहना है। लंगोटी में फाग खेल रहा है। पृथ्वी खिल खिलाकर खिल उठी है। प्रकृति चहक रही है। आकाश भी मस्त होकर हास्यामृत की झड़ी बाँधे हुए है।

क्योंकि आज देश की मुर्दनी दूर करने वाले, साहित्य का अन्धकार अपनी कल्याणमयी मृतसञ्जीवनी हास्य किरणों से भगाकर साहित्य को जगमगा देने वाले, देश की आँखों के तारे हमारे बेढब जी पूर्णरूप से जवान हुए हैं। मसल मशहूर है कि साठा तब पाठा। क्योंकि सच पूछिये तो यही उम्र है जब काम क्रोध लोभ मोह से लड़ता झगड़ता सच्चा ज्ञान सर्व विजयी होकर अपने आदर्श पर पहुँचता है और अपना वास्तविक चमत्कार दिखलाता है। इसलिये बेढब जी की इस उम्र की प्राप्ति पर मैं फूला नहीं समाता। इसके लिये ईश्वर को कोटिशः धन्यवाद देता हूँ और आपको बेढब जी बधाइयों पर बधाइयाँ।

यों तो मैं आपकी हास्यमयी बेढब लेखनी का आरम्भ ही से पुजारी रहा हूँ। ईश्वर की दया से लखनऊ रेडियो स्टेशन

पर—जहाँ हास्यरस के बड़े-बड़े कवियों तथा धुरन्धर लेखकों का जमघटा था—आपका पहले पहल दर्शन पाकर मेरी पूजा सफल हुई थी और मैं हर प्रकार से कृतार्थ हुआ था। किस तपाक से आप मिले थे मेरा ही हृदय जानता है!

आप हास्यरसावतार ही नहीं आप मनुष्यता के भी अवतार हैं। अवतारों के हृदय में अपने भक्तों के प्रति कैसा सच्चा स्नेह रहता है वह आपने उस बार—जब मैं कलकत्ते से बनारस आया था—स्टेशन पर, अपने यहाँ और उसके बाद अपने कालेज में श्री चोंच जी सहित मेरा स्वागत करके, प्रत्यक्ष कर दिया। आपकी तथा श्री चोंचजी की यह उच्चता, उदारता और कृपा मैं जीतेजी कदापि भूल नहीं सकता।

ऐसी शुभ घड़ी में क्या ही अच्छा होता कि एक थैली भी अभिनन्दन ग्रन्थ की रयाल्टी के साथ आपको भेंट की जाती। आपको इसकी आवश्यकता हो या न हो फिर भी जनता तथा सरकार का यह धर्म है कि आप सरीखे वयोवृद्ध लेखकों की बुढ़ापा की सुविधा का ख्याल रखे। आपही लोगों की लेखनी के प्रताप से हमारी हिन्दी जिसकी लोग उपेक्षा करते थे अब राष्ट्रभाषा ही नहीं वरन् विश्वसाहित्य में भी एक श्रेष्ठ आसन की अधिकारिणी हुई है। आप ही लोग देश का मुख उज्ज्वल करने और उसका मान और गौरव बढ़ाने वाले हैं।

सुना है कि लेखकों की सहायता के लिये अब शायद कुछ इनाम के द्वार खुले हैं। परन्तु आप सरीखे लेखकों के लिये

बेकार हैं। आप लोग ढूंढने के रत्न हैं। मान आदर सत्कार के दास हैं। स्वयं किसी प्रतियोगिता में जा नहीं सकते। अगर यह बात न होती तो गालिब जब प्रोफेसरी के लिये बुलाये गये थे और उनकी अगवानी के लिये प्रिन्सिपल साहब नहीं आए तब नौकरी पर लात मारकर लौट न जाते।

ईश्वर आपको हर बला से बचाते हुए साहित्य गगन में सदा सूर्य्य की भाँति चमकाते रहें। सब से बड़ी बला हास्य लेखकों के लिये समालोचक जी हैं जो किसी का वास्तविक मूल्य महत्व तथा मान न समझ सकते हैं और न देख सकते हैं। उनकी नजर न लगने पाये इसलिये इस शुभ अवसर पर मैं आपके करकमलों में अपनी—"चाची-भाषा" का 'सौ सोनार की एक लोहार की' नामक काला धागा बान्धे देता हूँ। यह आपका सदा कल्याण करता रहेगा।

"सौ सोनार की एक लोहार की"

जुग जुग जीयो मेरे खुड़पेंची राम,

इन दिनों मुझे पत्र लिखने की कुछ ऐसी बीमारी हो गई है कि तुम्हारी भी खबर लेनी ही पड़ी। मैं जानता हूँ कि 'खबर' शब्द पर तुम भड़क उठोगे। मुंह बिचका कर सदा की भांति यही कहोगे कि राम! राम! यह शब्द भी मुसलमानी है। कहते तो भाई सही हो। मगर क्या कहूँ अपनी लेखनी को, कम्बख्त ऐसी चटोरी बन गई है कि न मैं हिन्दू रहा न मुसलमान, खाली मनुष्यता का पुजारी बन कर रह गया हूँ।

तुम्हारा यह ख्याल भी ग़लत नहीं कि मैं हिन्दी नहीं जानता। मेरे स्कूल और कालिज के दिनों में हिन्दी बेचारी आठवें ही दर्जे तक टिमटिमा कर बुझ जाती थी। और उसकी किताबों में जब मैं "कहते हुए" को कहते भये पढ़ता था जिसको मैं किसी के सामने ज़बान पर ला नहीं सकता था तब मैं किताब ही को फाड़ कर फेंक देता था। ऐसी दशा में भला मुझे हिन्दी आती तो कैसे? हाँ थोड़ी सी संस्कृत अलबत्ता पढ़ी है। इसी में रो रो कर किसी तरह बी० ए० भी पास करना पड़ा था। क्यों कि नागरी अक्षरों की भाषाओं में तब कालिज में घुसने का केवल इसी में दम था।

इसको पढ़ते उस समय तो नानी मरती थी। मगर अब ईश्वर की कृपा से इसका पढ़ना बड़ा काम आ गया। क्योंकि इसी की मदद से तुम्हारी हिन्दी हिज्जे लगाकर कुछ न कुछ समझ लेता हूँ। वर्ना बिना उसका अनुवाद कराये मेरे लिये 'करिया अच्छर' थी। ऐसी हिन्दी को मातृ भाषा तो कहने का साहस नहीं होगा, कहो तो तुम्हारी खातिर इसे चाची-भाषा कह कर इसका सत्कार करूँ।

अगर "खबर" को "सुधि" से बदल दूँ तुम तो खुश होगे मगर हमारे हास्य साहब का मिजाज बिगड़ जायेगा। उन्हें इस जगह सुधि ऐसे सीधे सादे भोले भाले शब्द से कैसे सन्तोष हो सकता है। जो बेचारा तीन पाँच कुछ नहीं जानता? उन्हें तो 'विष कुम्भं पयो मुखं' वाले शब्द चाहिये जो आँसू भी पोछें और बगल में छुरी भी मारे।

शब्दों में यह करामात बोल चाल पर घिसते घिसते पैदा होती है। किताबों में धरे धरे नहीं। ऐसे शब्दों का मजा लेना हो तो किसी दिन डेढ़ बजे रात को अकेले सिनेमा देखकर घर लौटो। ईश्वर चाहेगा तो तबियत हरी हो जायेगी और नाई की तो फिर कभी तुम्हें जरूरत पड़ेगी ही नहीं, बशर्ते कि घर में घर वाली भी हो। खैर! हास्य साहब का फिर भी उतना डर नहीं होता जितना उसकी मेम साहब मिसेज शैली का। वह एक-एक शब्द तौल-तौल कर ऐसा परखती हैं जैसा नौकर से लाये हुए सौदे को घरवालियाँ। इसीलिये जब "खबर" शब्द प्रयोग करना पड़ा

तब उसी मेल के बोल चाल के और भी शब्द लाने पड़े ताकि भाषा की धारा कहीं पर ठोकर न खा जाये। नहीं तो मिसेज शैली की जहाँ नाक भौं सिकुड़ी तहाँ तो उनके मिस्टर के प्राण सूखे।

इसीलिये बेचारे हास्य साहब इस झगड़े में नहीं पड़ते कि कोई शब्द कहाँ पैदा हुआ है, देवलोक, मृतलोक या "जहन्नुम" में वह तो सभी शब्दों को जिन्हें हमारी बोल चाल ने अपना रखा है अपने बाप का माल समझकर हिन्दी के लिये गटागट हजम करते जाते हैं। उन्हें अपना समझो या पराया यह काम तो तुम्हारा है। मगर किसी हास्यलेख पर अपनी समझ का भण्डा फोड़ने के पहले इतना तो देख लिया करो कि जिन शब्दों पर तुम्हारी पवित्रता विचकती है उनके स्थान पर तुम्हारी भाषा का कोई शब्द काम भी देता है या नहीं। दूर कहाँ जाते हो यहीं देख लो। जो 'जहन्नुम' में झुंझलाहट का मजा है वह 'नर्क' में कहाँ?

तुम तो आसमान ताकते हुए चलने के आदी हो। तुम किसी हास्य लेखक की मुसीबत को क्या जानों जिस बेचारे को गड्ढा पाटने के लिये जमीन पर रेंगना पड़ता है और साथ ही साथ तुम्हें हँसाना भी? हँसने को तो जी भर के हँस लेते हो मगर जमीन का नाम सुनते ही दूसरों के सामने ऐसा कानों पर हाथ धरते हो मानो तुम सचमुच देवलोक में पैदा हुए हो। क्या करो? तुम्हें तो अपनी पंडिताई बघारनी है और मुझे मर

मर कर तुम्हें सुधारना। चाहे फूहड़ कहो या गँवार यह तो तुम्हारा आशीर्वाद है।

आदर्श चरित्रों के पीछे तुम कुछ ऐसे अन्धे हो रहे हो कि तुम स्वयं अपने ही को नहीं देख पाते। तब तुम्हें हास्य चरित्रों की खूबियाँ और बारीकियाँ कैसे दिखाई पड़ सकती हैं।

तुम चले हो अब हास्य की नाक काटने शिष्ट हास्य का ढोंग रच कर। यह तो अपनी श्रेष्ठता अपनी उच्चता का डंका पीटने के लिये हास्य का बलिदान करना है।

शिष्ट हास्य है क्या, किस चिड़िया का नाम है, जरा इसका नमूना भी तो दिखलाओ। नहीं तो हमारे भय्या अकिल बहादुर के कथनानुसार—"शिष्ट-हास्य वह है जिसके पढ़ते समय मुंह तो जरूर खुलजाये मगर हँसी में नहीं जुम्हाई में।" ऐसा हास्य जिसे पढ़कर हँसी न आये तुम्हीं को मुबारक हो या वह हास्य जिसको तुम ऐसे अनोखी बुद्धि वाले दो ही चार आदमी समझ सकें उसको भी मेरा दूर ही से प्रणाम है। अब अगर हास्य लेखक तुम्हारा ही मुँह देखा करें तब उनकी रचनाओं को पूछेगा कौन? तुम तो लाला फोकट मल हो! तुम्हें तो मुफ्त की चाय चाहिये। शकर दूध पड़ा हो या न पड़ा हो तुम्हारी बला से। मगर जो टके खर्च करेगा वह तो आनन्द भी लेना चाहता है और लाभ भी उठाना। उसे तुम्हारी तरह सूखी हँसी से कब सन्तोष हो सकता है?

वह दिन भूल गये जब तुम एक बच्चे को डाँट रहे थे कि—

"खबरदार ! 'बाप' का शब्द मत प्रयोग किया कर। उसके स्थान पर पिता जी कहा कर। क्योंकि वह शब्द गवाँरू है।" वैसे ही तुम्हारी टाँग फिसली और तुम लगे कफन फाड़ के चिल्लाने—"हाय बाप रे बाप ! मर गया" उधर बच्चे ने भी शोर मचाया कि "बाप को मारिये गोली वह तो गवाँर है। पिताजी को पुकारिये पिता जी को।"

समालोचना में तुम 'वाह वाह' भी करते हो और उसके साथ 'किन्तु और परन्तु' का भी क्या खूब खुड़पेंच लगाते हो कि उसकी तो तारीफ हो ही नहीं सकती। इसके लिये हम हास्य साहब भी तुम्हारी पीठ ठोंकते हैं। सचमुच उसमें वही मजा मिलता है जो एक पंडित जी की निम्नलिखित बातों में है।

पंडित जी एक भले मानुस की कन्या का वर ढूढ़ने गये थे। खुश खुश लौट कर लड़के के रूप और गुण का ऐसा बखान किया कि सब फड़क उठे। और समझ लिया कि लड़की के भाग्य से इतना योग्य बर मिला है। इतने में किसी ने पूछा कि—"पंडित जी भला उसमें कुछ किन्तु परन्तु भी है?"

पंडित जी ने कहा—"हाँ 'किन्तु परन्तु' विपे तो सभों में कुछ न कुछ होता ही है।"

लोगो ने फिर पूछा—"तो आखिर उसमें क्या है?" पंडित जी बोले—"अरे ! केवल इतना ही कि उसके लिंग वचन कारक का कुछ पता नहीं है।"

"क्या ?"

"यही कि न वह पुल्लिंग है और न स्त्री लिंग।"

डरता हूँ कि कहीं तुम इसे भी अश्लील न कह दो, क्यों कि यह तुम्हारे दिमाग की खूबी है कि जहाँ न भी हो वहाँ भी तुम बिना अश्लीलता के भरमार किये मान ही नहीं सकते।

तुम्हें इसकी बड़ी शिकायत रहती है कि हास्य लेखों में कोई प्रभाव ही नहीं रहता। इसी को दूर करने के लिये यह पत्र लिखना पड़ा है। इसे पढ़कर देखो तो तुम्हारा दिल गालियाँ देने लगा या नहीं। इसी को भाई कहते हैं सौ सोनार की और एक लोहार की। अच्छा अब एक ग्लास पानी पीलो। आओ शेकहैन्ड

तुम्हारी दोअस्तियों का शिकार

हास्य लेखक



जूड़ी बुखार

इस पत्र की मनोरञ्जक कहानी अपनी विचित्रता तथा नवीनता की बहार तो दिखाती ही है फिर भी है गूढ़ और विचारणीय। इसमें लेखक महोदय ने गृहणी चरित्र पर बड़ी गहरी व्यंगपूर्ण दृष्टि डाली है और यह वास्तविकता दिखलाई है कि गृहणियों की शोभा और कल्याण सदा स्त्री ही बनी रहने में है, देवी, दानी वा पुजारिन बनने में नहीं। पत्नी बिना आकर्षणमयी तथा मोहनी बने—जिसका अस्तित्व केवल स्त्री गुणों पर निर्भर है—पति-हृदय को कदापि वश में नहीं रख सकती।

—सम्पादक

मेरे गोरखपुर बटा बस्ती जी,

कहो यह सम्बोधन तो तुम्हारे लिये उपयुक्त है। क्योंकि तुम्हारा जन्म स्थान बस्ती है मगर रहते हो अब गोरखपुर में। न पसन्द हो तो मुझे कुछ खरी खोटी सुनाकर तबियत हल्की कर लेना।

हाँ! तुम्हारे यहाँ न आ सका इसके लिये मुझे अफसोस जरूर है। अव्वल तो अब छुट्टियाँ इस हिसाब से होती हैं कि कोई कहीं आ जा न सके। दूसरे क्या बताऊँ कुछ कहते नहीं बनता। क्योंकि ईश्वर न करे कि किसी को मेरी तरह किसी के यहाँ मेहमान बनना पड़े। एक काम से कानपुर जाना पड़ा था। शाम की गाड़ी से लौटने के लिये अपना हैन्डबेग, रिक्शे पर रख ही रहा था कि मेरे एक पुराने मित्र जो हिन्दी संसार में कवि 'विलक्षण' जी, और उर्दू संसार में हजरत 'नायाब' के उपनामों से मशहूर हैं, न जाने कहाँ से टपक पड़े और उन्होंने झट मेरा हैन्डबेग उतार लिया। फिर तो वह ऐसे चिपटे कि जान छुड़ानी मुशकिल हो गई। आप लड़ाई के जमाने में सरकार के खर्चे पर विलायत हो आये थे जिससे उनका ज्ञान विज्ञान कुछ ऐसा बढ़ गया था कि उनकी लच्छेदार बातों में फँसकर निकल भागना गैर मुमकिन था।

क्या करता झकमार कर उनकी मेहमानी स्वीकार करनी पड़ी।

उन्हें अपने मकान का ताला खोलते देखकर मैंने ताज्जुब से पूछा—"क्या इन दिनों अकेले रहते हैं ?"

वह बोले—'नहीं भाई। हम लोग डुप्लिकेट चाभी रखते हैं। वह जमाना तो रहा नहीं कि महाराजिन भी हो, नौकरानी और नौकर भी हो कि घर हर वक्त आबाद रहे। किसी न किसी जरूरत से हम दोनों को अकसर ही बाहर निकलना पड़ता है। आज वह सिनेमा जाने के लिये कह भी रही थी। मुझे भी चलने को कहा था। मगर भाई मुझे तो जिन्दा मूर्तियों को छोड़कर मुर्दा तस्वीरों से दिल बहलाना नहीं आता। सच पूछिये तो यह दिल बहलाना नहीं झक मारना है। मिट्टी का फल खाना या कागज का फल सूंघना है!"

मैंने जवाब दिया—"इसमें क्या शक है। जो हमारी नजरों की कदर न कर सके उसको देखना अपनी आँखें फोड़ना है।"

कवि जी फड़क उठे। उन्होंने सदर दरवाजा भेड़कर बैठक खोली और बिजली की अंगीठी जलाकर चाय की केतली चढ़ा दी।

मैंने भी कोट पतलून उतार कर एक खूंटी पर टांग दिया और हैन्डबैग से एक लुंगी निकालकर लपेटता हुआ बोला—"क्या करूँ भाई धोती की जगह अब लुंगी ही पर सहारा करना पड़ता है।"

उन्होंने कहा—"इसको भी गनीमत समझिये। क्यों कि अब वह दिन आ रहा है कि लंगोटी भी किसी के बदन पर

न दिखाई पड़े तो कोई ताज्जुब नहीं। फिर भी शादी ब्याह के के मामले में किसी कमब्ख्त की आँखें नहीं खुलतीं। जहाँ जाओ बीस पच्चीस हज़ार से कम की बात चीत नहीं होती। जब मेरी मुन्नी ब्याहने योग्य होगी तब ईश्वर जाने यह भाव कितना बढ़ जायेगा। इधर टैक्सों का हाल कहने काबिल नहीं। बरसाती मेंढक की तरह दिन ब दिन बढ़ते ही जाते हैं। मरने पर सब मुसीबतों से छुटकारा मिल जाता है। मगर इनसे तो मर कर भी छुट्टी नहीं मिलती।

× × ×

इसी तरह कुछ देर तक भिन्न भिन्न प्रसंगो पर टीका टिप्पणी होती रही। मगर चाय पीने के बाद कवि जी पर कविता भवानी आ गई। बस लगे अपनी कविता और गजलें सुनाने। मैं भी उनके रंग में कुछ ऐसा डूबा कि मुझे दीन दुनिया की कुछ खबर ही न रही। मेरी वाह वाह पर कवि जी की मस्ती बढ़ती ही गई। यहाँ तक की एक दफे उछल कर वह मुझसे चिपट गये और लगे कहने कि—"भाई जो मजा दिल की बातों में है वह किसी में नहीं और दिल की बातों का मजा दिलदार के संग। इन बातों को भला निगोड़ संख क्या समझें जिनके दिल ही नहीं होता। अगर होता भी है तो पेट के नीचे दबे दबे एक दम पिचक जाता है।"

यह कह कर उन्होंने लपक कर अलमारी से एक ब्रान्डी की बोतल निकाली। उसे देखते ही मैंने ताज्जुब से पूछा—

"अरे गजब! यह आपको कैसे मिल गई? यहाँ तो इसकी रोक है?"

वह हँसकर बोले—"हाँ शराबियों के लिये है जो उसे शराब समझते हैं मगर मेरे लिये तो यह 'जुलाबे दिल' है। पेट के लिये जैसे चूरन वैसे दिल के लिये यह। यही दिल में सफाई और मस्ती लाती है। मस्ती जिन्दगी के लिए कितनी जरूरी है यहाँ कोई समझने की कोशिश ही नहीं करता और रोक की भली कही। यह तो बिक्री दूनी और दाम चौगुना बढ़ाने का नुस्खा है।"

दो ही एक घूंट में हम दोनों एकदम इन्द्रासन पर पहुँच गये और दिल में सचमुच वह सफाई आई कि संकोच का जाला झाड़ा सब छँट कर साफ हो गया। फिर तो खूब गहरी छनने लगी।

कविजी मजे में आकर दून की हाँकते हुए बोले—"ईश्वर ने संसार के लिए बस दो ही रत्न तो पैदा किये हैं एक यह 'जुलाबे दिल' और दूसरा 'मुरादे दिल'।"

मैंने पूछा—"मुरादे दिल से आपका इशारा स्त्री की तरफ तो नहीं है?"

वह चहक उठे—"भाई वाह! खूब निशाना मारा। मगर स्त्री क्या है उसमें कैसे कैसे गुण होते हैं यह देखना हो तो विलायत में जाकर देखिये जहाँ स्त्री मरते दम तक स्त्री ही बने रहने में अपना सौभाग्य समझती है। मगर हिन्दुस्तान में

स्त्रियाँ कहाँ ? यहाँ तो पैदा होते ही सब मातायें बन जाती हैं। इसीलिये देवियाँ कहलाती हैं तब उनमें स्त्री गुणों का संचार भला कैसे हो सकता है ? स्त्री गुणों में तो वह जादू है कि बैल को भी आदमी बना दे और यहाँ देवियों का यह प्रभाव है कि अच्छा खासा आदमी भी बैल बनकर रह जाता है।'

मैं एक बारगी हँस पड़ा और लपक कर हाथ मिलाते हुए कहा—"मान गया। इतनी गहराई उस पर इतनी सादगी और सफाई ! क्यों न हो आखिर कवि ही तो—"

कविजी उसी जोश में चमक कर बोले—'अजी मैं कवि भी बना तो इन्हीं स्त्रियों के ही पुण्य प्रताप से, विलायत जाने के पहले मैं अपने बराबर महात्मा, महापुरुष, भला मानुष, सज्जन, धर्मात्मा, ज्ञानी, पंडित किसी को भी नहीं समझता था। मगर जब विलायत पहुँचा तो वहाँ कोई भी मुझे फूटी आँखों से भी देखना पसन्द नहीं करता था क्योंकि महिलाओं के आगे मेरी घिघ्घी बँध जाती, तब समझा कि असल में मैं क्या था। आखिर एक दिन एक अधेड़ महिला ने पूछा—जो एक होटल में मेरी ही मेज पर चाय पी रही थी—"क्यों जनाब आप पुरुष भेष में स्त्री तो नहीं हैं जो इस तरह चुप रह कर मेरा अपमान कर रहे हैं ?" तब मेरी आँखें खुलीं। अपनी असलियत पहचानी, पुरुषों के गुण समझे और स्त्रियों के गुण परखे।"

मैंने कहा—"यह कहिये आपको बैल से आदमी उसी ने बनाया।"

वह बोले—"और कवि भी उसी ने बनाया और प्रेम करना भी सिखाया। वर्ना उसके पहले तो खाली तुकबन्दी करता था और प्रेम तो जानता ही न था कि किस चिड़िया का नाम है।"

मैंने ताज्जुब से पूछा—"अरे उस अधेड़ के प्रेम में पड़ गये!"

उन्होंने कहा—"यही तो वहाँ की स्त्रियों की खूबी है कि वे अन्त तक अपना आकर्षण और मधुरता बनाये हुए सदा मोहनी बनी रहती हैं और मुर्दा से मुर्दा दिल में जान फूंक देने की शक्ति रखती हैं और यहाँ स्त्रियों के रोम रोम से धुत धुत के साथ ऐसी फुफकार निकला करती है कि जिससे रीझा हुआ दिल भी एक दम जल भुन के खाक हो जाता है। तभी तो आज यह मेरी बड़ी खुश किस्मती है कि इस वक्त श्रीमतीजी के न होने से आपकी संगति का यह अपूर्व आनन्द ले सका नहीं तो यह दिल कहीं इतना चहक सकता था? कोई माने या न माने असलियत तो यह है कि जो दशा चूहों की बिल्ली के सामने और छात्रों की मास्टरों के आगे होती है ठीक वही हालत श्रीमानों की अपनी श्रीमतियों की मौजूदगी में हुआ करती है। हर वक्त दुम दबी, दिल धक धक और मुँह तोबड़ा सा लटका हुआ।"

मैं भी मजे में था। इसलिए जोश में आकर उसका इस प्रकार समर्थन कर दिया—"बहुत सही है। जिस प्रकार बहुओं के लिये सास तपेदिक होती हैं और सासों के लिए बहुएँ डबल निमोनिया उसी तरह श्रीमानों के लिए उनकी श्रीमतियाँ भी "जूड़ी बुखार से कुछ कम नहीं होतीं।"

कविजी उछल कर बोले—"अजी उससे भी ज्यादा। क्योंकि उसका तो इलाज भी है मगर इस 'जूड़ी बुखार' का तो कोई इलाज ही नहीं। इसकी तारीफ में कहाँ तक करूँ। ईश्वर ने तो हमारे यहाँ की श्रीमतियों में नख से शिख तक वह वह खूबियाँ भर रखी हैं कि तारीफ हो ही नहीं सकती।"

मैंने कहा—"फिर भी कुछ तो बताइये। आप दुनिया देखे हुए हैं आपकी छानबीन जरूर सुनने काबिल होगी।"

उन्होंने कहा—अच्छा तो पहली खूबी इन लोगों की समझ ही की देखिए। भगवान तक भी भले ही गलती करें तो करें मगर यह लोग बिल्कुल 'गल्ती-प्रूफ' होती हैं स्वप्न में भी कभी गलती नहीं करतीं। इसलिए यह न पछताना जानती हैं, न अपने को कभी सुधारने योग्य समझती हैं। इनकी गलतियों से घर तबाह हो जाये या पतिजी की जान ही क्यों न निकल जाये फिर भी दोषी होते हैं—श्रीमान ही। स्वयं दोषी नहीं हो सकतीं। दूसरी खूबी इनकी निगाहों की है जिनमें सबसे निकम्मे दिखाई पड़ते हैं श्रीमानजी और तारीफ यह कि संसार भर की स्त्रियाँ

बूढ़ी, जवान, बच्चकानियाँ सब की सब दिखाई पड़ती हैं सौत ही सौत। तीसरी खूबी इनकी दूरन्देशी की है जो इनके मिजाज को श्रीमानजी के सामने इसलिए एटमबम बनाये रखती है कि श्रीमानजी के हृदय में स्वप्न में भी प्रेमभाव का संचार न होने पावे और न उन्हें हँसने बोलने की आदत पड़ने पावे।

चौथी खूबी उनके आचरण की है जो इधर पतिजी की कुशलता के लिये इनसे रात दिन पूजा भी कराती रहती हैं और उधर श्रीमान को जिन्दगी भर खूनके आँसू बहाते रहने के लिए इन्हें टियर-गैस (Tear Gas) भी बनाये रखती हैं। इससे पतिजी की आधी जिन्दगी कम हो जाये तो हो जाये उनकी बला से।

इतनी खूबियाँ सुनते सुनते मुझे भी पतिप्रेम पर एक अनोखी कहानी याद आ गई जिसको कहने के लिये मैं बेताब हो गया। इसलिए कविजी जैसे ही जरा साँस लेने के लिए रुके वैसे ही मैं बोल उठा—"अच्छा तो इसी सिलसिले में मुझसे भी पति-प्रेम पर एक कहानी सुन लीजिये जा आपके विलक्षण ज्ञान के भण्डार में शायद पाँचवीं खूबी का स्थान पा जाये।"

कविजी ने कहा—हाँ हाँ जरूर जरूर!"

मैंने यों कहना शुरू किया—"एक श्रीमानजी के एक नहीं दो-दो श्रीमतियाँ थीं और दोनों के प्रेम पर श्रीमान को बड़ा घमण्ड था क्योंकि दोनों ही उनसे कहा करती थीं कि—नाथ तुम न रहोगे तो मैं जान दे दूंगी।

"एक दिन श्रीमान को यह सूझा कि लाओ इन दोनों के प्रेम

की जरा परीक्षा तो लें। यह सोचकर एक दिन शाम को वह दम साधे हुए हाथ पैर फैलाकर जमीन पर पड़ गये। खाने के लिये खिचड़ी बनी थी। बड़ी ने छोटी से कहा कि देखो तो आज वह खाने के लिये अब तक क्यों नहीं आये।

छोटी श्रीमान को जगाने आई। मगर यहाँ तो मामला कुछ और ही था। घबड़ाकर बड़ी को बुला लाई। दोनों को विश्वास हो गया कि श्रीमानजी दगा दे गये।

छोटी ने पूछा कि अब रोना पीटना चाहिये। बड़ी ने कहा—अभी नहीं। पहले खाना खा लो बदन में कुछ ताक़त तो हो जाये।

दोनों खाने बैठीं तो बड़ी ने कहा कि खिचड़ी बिना घी के गले में अटकती है। जाओ घी निकाल लाओ और उनका भी हिस्सा लाना ताकि उनकी आत्मा को भी सन्तोष हो जाये और उनका शोक मनाने के लिये हम लोगों का गला भी जरा सलसल हो जाये।

छोटी ने लौट कर कहा कि घी की मटिया जहाँ टंगी है उसी के ठीक नीचे वह पड़े हैं घी कैसे निकालूँ? बड़ी ने कहा—अरे अब वह मर गये काठ कोटी हो गये छाती पर लात रख के मटिया उतार लो।

खाना खाने के बाद फिर छोटी ने पूछा—अब रोना शुरू किया जाये? बड़ी ने कहा—पागल हुई हो। अभी से रोया जायेगा तो सुबह तक हम दोनों का क्या हाल होगा?

इसलिए सुबह से रोना पीटना शुरू हुआ। खूब ज़ोरों के साथ और छाती पीट पीट कर। यह देखकर टोला पड़ोसी सभी हाय हाय करने लगे।

घर का दरवाजा था छोटा। श्रीमानजी ने कुछ ऐसे बेतुके ढंग से अपने हाथ पैर फैला रखे थे कि उनकी लाश उसमें से निकल नहीं सकती थी। आखिर पड़ोसियों की यह राय हुई कि दीवाल गिरा दी जाये। दोनों सौतें रोती हुई हाथ जोड़कर खड़ी हुईं और सिसकती हुई कहने लगीं कि एक तो ईश्वर ने हमारा सौभाग्य लूटा और आप लोग हमारा घर भी उजाड़े दे रहे हैं। हम लोग यों ही मुसीबत की मारी हैं। अब आप ही लोगों की दया का सहारा है। वह तो मर ही गये। दर्द पीड़ा तो उनमें है नहीं और न यह चोला उनके किसी काम का है। इसलिये हाथ पैर काट कर किसी तरह उन्हें दरवाजे से बाहर निकाल लीजिये।

"यह राय पास होते ही श्रीमान जी की साधना यकायक टूट गई। फिर तो वह सर पर पाँव रख कर ऐसे भागे कि घूम कर ताकने का नाम भी न लिया।"

अभी हम दोनों खूब जोरों से हँसते हुए इस कहानी का मजा ले ही रहे थे कि यकायक बिजली की बत्ती बुझ गई।

मैंने चौंककर पूछा—"अरे! यह क्या हुआ?"

अन्धकार में से एक गरजती हुई आवाज आई—"ताकि तुम मुझे न देख सको और मैं तुम्हारे मुँह में यह जलती हुई

लुआठी खोंस कर तुम्हारी जूड़ी उतार दूँ और बुखार उतारने के लिये आ रही है पुलिस, फोन कर चुकी हूँ।"

अब आँखें फाड़ कर उधर जो देखा तो सचमुच लाल-लाल बड़ा-सा अंगारा मेरी तरफ तेजी से बढ़ता हुआ दिखाई पड़ा। मैं प्राण लेकर गिरता पड़ता किसी तरह भागा। घबड़ाहट और अन्धियारी में कोट पतलून और हैन्डबेग भी लेने का अवसर न मिला। बाहर आया तो कम्बख्ती से पानी बरस रहा था और बारह का घंटा भी बज रहा था। बदन पर खाली बनियाइन और लूंगी और टका पास नहीं। परदेस और आधी रात का बरसात। इस विकट परिस्थिति में अंगूठी बेचकर किस तरह घर पहुँचा न कहने काबिल है और न सुनने काबिल।



मेहमान

इस विचित्र पत्र में-जिसे अपनी स्त्री को लिखा है-एक अत्यन्त ही अनोखी और हास्य-मय यात्रा का वर्णन करते हुए लेखक महोदय ने जातीयता NATIONALITY के भाव को विशेष महत्त्व दिया है। उसके प्रचार में जो-जो बुराइयाँ बाधक हो रही हैं उनको बातों-बातों में इस खूबी से एकत्रित करके उनपर छींटा कसा है कि क्या कहना है। साथ ही कहानी कला के मर्म पर प्रकाश डालते हुये ढोंगी साहित्यिकों की अच्छी खबर ली है और सबसे बड़ी बात तो इसमें यह है कि यह बतलाते हुये कि मोर की तरह कहानी की भी शोभा उसकी दुम ही में होती है लेखक महोदय ने इस कहानी की स्वयं ही दुम बनकर प्रत्यक्ष रूप से ऐसा दिखला दिया है कि हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जाते हैं।

—सम्पादक

मेरी तुम,

दुआ सलाम तो अभी उधार रहने दो। जब तबियत ठिकाने होगी तो मय सूद के वसूल कर लेना। मैं जानता हूँ कि परसों शाम को तुम्हारे पास बलरामपुर न पहुँच सकने के कारण तुम्हारा तुलसीपुर जाकर देवी पाटन के दर्शनों का प्रोग्राम बिगड़ गया होगा और तुम आग बबूला जरूर हो रही होंगी। मगर मैं करूँ क्या? तुम्हारे उनके यानि मेरे भाग्य में तो यही लिखा है कि सोना भी छूओ तो मिट्टी हो जाय तब तुम्ही बताओ मेरा क्या वश। इसीलिये तो गोंडा पहुँचते ही तुम्हें लिख रहा हूँ कि तुम्हारा गुस्सा जड़ न पकड़ने पाये। क्योंकि दुनिया में मैं किसी चीज से उतना नहीं डरता जितना...जाने भी दो। कहीं और न पारा चढ़ जाये तब अपनी खैरियत के बदले थर्मामीटर की सलामती के लिये ईश्वर की गोहार लगानी पड़े। वह भी कहीं इस बेवक्त की शहनाई से बिगड़ न उठें फिर तो मैं दीन दुनिया हर तरफ से गया।

अच्छा अब हाथ मुँह धोकर एक प्याली चाय पी लो तब इसको पढ़ो।

बृहस्पत को बलरामपुर जाते समय तुम कह गई थीं कि सनीचर को कचहरी से आते ही चार बजे वाली बस से बलरामपुर आकर वहीं जलपान करना, फिर खाना खाकर

रात की साढ़े सात बजे वाली बस से उतरौला जाना और वहाँ से सुबह को अपने कमीशन के काम पर चले जाना और एतवार की शाम को लौटना भी तो बलरामपुर ही की तरफ से। ताकि हमलोग तुम्हारे साथ सोमवार को सुबह की गाड़ी से तुलसीपुर जाकर देवी पाटन का दर्शन कर सकें।—देखो तुम्हारा आदेश किस तरह हर्फ़ बहर्फ़ बर जबान याद है। कहो हाँ। अब मेरी सुनो।

इन दिनों गुमड़ीघाट का पुल टूट जाने से गोंडा से सीधे उतरौला जाने में काफी देर लगती है और बीच में नाव पर भी चढ़ना उतरना पड़ता है और जहाँ मुझे कमीशन पर पैमाइश करनी थी वह उतरौला से भी ३ कोस आगे है। इसलिये मैंने खुद ही दोनों पक्षों के वकील मिस्टर हनीफ़ और श्रीकान्त जी की राय से सनीचर की शाम ही को बलरामपुर होकर जाने की ठानी। किसी तरह दौड़ धूप कर ३ बजते-बजते दीवानी के तीन मुक़दमें खतम किये। रह गया एक मुक़दमा तहसील का। उसके लिये मुन्शीजी को समझा दिया कि इसमें आज कुछ होगा नहीं, सम्मन तामील होगा तो उधर से ख़ाली उज्रदारी दाखिल होकर तारीख हो जायेगी।

मिस्टर हनीफ़ ने एक इजलास से दूसरे इजलास पर जाते हुए मुझसे कहा कि—"आप पहली बस से निकल जाइये। मुझे अभी छुट्टी नहीं मिली है। मैं दूसरी बस से आऊँगा जो बलरामपुर होकर जाती है।"

मैंने कहा—'तब मैं आपको उसी बसपर बलरामपुर में मिलूँगा।'

मैं रिक्शे पर बैठा ही था कि मुन्शीजी के साथ तहसील का मुवक्किल दूसरे रिक्शे पर फट पड़ा और झट से १०) का नोट मुझे निकाल कर देने लगा। मैंने लाख लाख कहा कि आज कुछ होगा नहीं बेकार रुपये खर्च न करो। जब जान लिया कि बिना रुपये खर्च किये वह मान नहीं सकता तो जी में आया कि लपक कर तहसील हो आऊँ। आई हुई लक्ष्मी को ठुकराना अच्छा नहीं फिर सोचा कि तहसील एक मील है। मुमकिन है चार बजे वाली बस न पकड़ सकूं। मुवक्किल का बिगड़ जाना सौ बार मञ्जूर था मगर तुम्हारी भौं पर बल पड़ना, जीते जी कभी भी नहीं। इसलिये मुकदमे को समझा बुझाकर एक दूसरे वकील साहब के सुपुर्द कर दिया।

घर पहुँचते ही देखा कि एक रिक्शे पर श्रीकान्त जी सीधे उतरौला जाने वाली चार बजे की बस पकड़ने जा रहे हैं। मैं चट अपना हैन्डबेग और छतरी लिये उनके रिक्शे पर बैठ गया।

मैंने उनसे कहा—"अगर गुमड़ीघाट की उस पार की बस ठीक टाइम पर आपको मिल गई तो आप साढ़े सात बजे तक उतरौला पहुँच जायेंगे। इसलिये मुवक्किलों से कह दीजियेगा कि मेरा इन्तजार साढ़े आठ बजे वाली बस से करें जो

बलरामपुर होकर जाती है। उसीसे मिस्टर हनीफ भी आयेंगे।"

श्रीकान्त जी चौंक कर बोले—"वाह! मैंने आप लोगों के ठहरने का इन्तजाम अपने गाँव में अपने घर पर किया है जो मौका से सिर्फ मील भर के फासले पर है। इसीलिये उतरौले में हाथी भी मंगवाया है कि बस से उतरते ही सीधे गाँव चले चलें। एक तो बरसात और दूसरे कल पानी भी खूब बरसा है। सिवाय हाथी के और कोई सवारी जा नहीं सकती।"

मैंने कहा—"मगर मुझे एक खास काम से उसी चार बजे वाली बस से बलरामपुर पहुँच जाना जरूरी है ताकि वहाँ दो घण्टे रह कर दूसरी बस साढ़े सात बजे रात को पकड़ सकूँ। क्या करूँ ससुराल का मामला ठहरा अगर नहीं पहुँचूँगा तो बड़ी शिकायत होगी।"

श्रीकान्तजी हँस कर बोले—"तभी यह ठाठ है जूते पर पालिश भी है और पतलून में क्रीज भी। मगर बुढ़ापे में ससुराल का ख्याल! यह आपने खूब कहा।"

मैंने मुस्कुरा कर जवाब दिया—"अरे! भाई बुढ़ापे में ससुराल कितनी मीठी होती है आप क्या जाने? यों तो इस उम्र में कहीं हँसने बोलने का सहारा नहीं। खुद अपना ही दिल कम-बख्त पिछड़ता है। अगर हिम्मत भी करूँ तो लोग मुझे पागल समझेंगे और बिना हँसे-बोले रहना जिन्दगी की जड़ काटना है। एक ससुराल ही ऐसी जगह है जहाँ हम बूढ़ों के भी जरा

आँसू पुछ जाते हैं, जवानी के स्वप्न कुछ देखने को मिल जाते हैं और घूँघट की आड़ में श्रीमतीजी की चितवन भी। जो अब कहाँ नसीब ? अब तो हर बात में और हर जगह आँख ही देखनी पड़ती है।"

न कहोगी कैसी तुम्हारी तारीफ की।

मगर बस स्टेशन पर पहुँचते ही ससुराल के सब मनसूबे खाक में मिल गये। क्योंकि उतरौलेवाली और बलरामपुर वाली दोनों बसें तय्यार खड़ी थीं। मगर टिकट सब बिक चुके थे। अब तो १०) का हाथ में आकर मुफ्त में निकल जाना बुरी तरह खल गया।

× × × ×

यह भी तकदीर की खूबी है कि दूसरी बस जो पाँच बजे छूटती है वह उस दिन छूटी सवा सात बजे जब चिराग जल गये। फिर भी मिस्टर हनीफ न आये। श्रीकान्तजी तो बस स्टेशन पर चाय बिस्कुट उड़ा चुके थे और मैंने बिस्कुट का एक छोटा पैकेट लेकर जेब में रख लिया था मगर मारे अफसोस के खाया न गया। मोटर की मरम्मत हो चुकी थी फिर भी शोफर बहुत सम्हाल कर चला रहा था। इसलिए बलरामपुर पहुँची सवा नौ बजे रात को। मैंने शोफर से पूछा यहाँ कितनी देर तक रुकोगे ताकि अगर समय हो तो लपक कर तुमलोगों को अपने न पहुँच सकने का कारण बता आऊँ। क्यों कि तुम दो ही फरलांग के फासले पर थीं। उसने कहा कि बस सिगनल

लेलूँ चलता हूँ। मगर न जाने वह कहाँ जाकर सोगया कि आधे घन्टे तक मैं कसमसाता ही रहा।

राम-राम करके पौने दस बजे वहाँ से मोटर चली उसके साथ पानी भी खूब जोर से बरसने लगा। ईश्वर जाने रात अन्धेरी होने के कारण या फिसलन के डर से या फिर बिगड़ जाने के ख्याल से मोटर की चाल में तेजी न आ सकी। जब उतरौला तीन मील रह गया तो एक झटके के साथ मोटर खड़ी हो गई। बौछारों से काफी गत बन चुकी थी। उसपर पानी बरसते में सभों के साथ मुझे भी उतरना पड़ा कि ढकेलने से से शायद मोटर में कुछ जान आ जाय। खैरियत हो गई कि पाँच ही मिनट बाद मोटर चल पड़ी।मगर कपड़ों की हालत कहने काबिल न रही। पतलून घुटनों तक कीचड़ से लथपथ। कोट व कमीज रंगीन डायरी की रंगरेलियों, पनडब्बे की शोखियों, और फाउन्टेनपेन की, जिसका ढक्कन खुल गया था, छेड़ छाड़ से होली की बहार दिखाने लगे उस पर जेब में जब हाथ डाला तो मालूम हुआ कि बिस्कुट हलुआ बनकर एकदम खीर बन गया था।

किसी तरह सवा ग्यारह बजे रात को उतरौला पहुँचे। मुवक्किल नदारद। हमलोग श्रीकान्तजी के चाचा के यहाँ पहुँचे जो उतरौले में रहते हैं। द्वार पर हाथी बँधा था! मगर इस वक्त श्रीकान्तजी के गाँव जाने के लिये हाथी पर छ मील सफर करना बिलकुल गैरमुमकिन था।

मेरे बेग में शरीर के अलावा बनियाइन, जाँघिया, कुर्ता, पाजामा, तौलिया और एक लुटिया थी। इसलिये चट कपड़े बदल कर भींगे हुए कपड़ों को निचोड़ कर आँच में सुखाने के लिये भीतर भेज दिया।

खाते-पीते एक बज गया। सब लोग बाहर बरामदे में ही लेटे। मैं किनारे पर था। उसी तरफ नीचे एक बनिये का टट्टू बँधा था जो कम्बख्त हर दो मिनट पर हिनहिनाता था। उसकी वजह से मच्छरों की भनभनाहट भी काफी थी। ढाई बजे रात तक करवटें ही बदलते बीता। तीन बजे जैसे ही जरा आँख लगी थी कि टट्टू वाले ने टट्टू के मलने के साथ बिरहा अलापना शुरू कर दिया। बस बदन में आग ही तो लग गई।

× × ×

सुबह को यह प्रोग्राम बना कि पहले मौके पर जाकर काम किया जाय। उसके बाद श्रीकान्तजी के गांव जाकर उनके घर खाना खाया जाय तब वहाँ से २ बजे लौट कर श्रीकान्त जी गोंडा जाने के लिये ५ बजे शाम वाली बस पकड़ें और मैं तुम्हारे पास पहुँचने के लिये छ बजे वाली बस से बलरामपुर जाऊँ।

अपने सूखे हुए कपड़ों की जो हालत देखी तो मैंने जल्दी से उन्हें लपेट लुपेट कर बेग में ठूँस दिया ताकि किसी और की उन पर नजर न पड़ने पाये।

बरसाती रास्ता। क़दम क़दम पर कीचड़-दलदल पानी। एक जगह पानी में खड़ा होकर हाथी पानी पीने लगा। फिर वहाँ वह कुछ ऐसा अड़ा कि टसकने का नाम ही न लेता था। फीलवान ने कस के बर्छी मारा। हाथी चिग्घाड़ कर तिलमिला उठा। और ऊपर सूँड़ करके इस ज़ोर से फुफकारा कि मुझे तो ऐसा जान पड़ा कि मानो किसी ने तोप में पानी भरके मुझ पर दाग दिया। क्योंकि आगे मैं ही था। फीलवान के हाथी के सर से चिमट जाने के कारण निशाने पर मैं ही पड़ गया। चोट जो लगी मैं ही जानता हूँ। मगर एक कुर्त्ते का सहारा था वह भी कीचड़ों से भर कर चौपट हुआ। उसे उतार कर उसी से हाथ मुँह पोछा।

जब मौका बिलकुल पास आ गया तब मुवक्किल साहब मेरी सवारी के लिये एक टट्टू लिये उतरौला की तरफ आते हुए दिखाई पड़े।

श्रीकान्तजी बिगड़ कर बोले—"वाह क्याँ अब चले हो। वह भी एक टट्टू लेकर। मैं क्या तुम्हारी खोपड़ी पर आता।

मगर हाथी देख कर टट्टू कुछ ऐसा भड़का कि मुवक्किल साहब जवाब देने के पहले ही मेढ़ से फिसल कर जड़हन के खेत में चित तैरने लगे।

खैर किसी न किसी तरह मौके पर पहुँचा। गद्दी पर दुमची के पास हाथी बाँधने वाली जञ्जीर भी रखी थी। न जाने कैसे मेरा पाजामा उसके अंकुश में फँस गया कि मैं तो किसी तरह

जमीन पर उतर आया मगर मेरे पाजामा का एक बड़ा सा टुकड़ा अलग होकर ऊपर ही रह गया।

झट तौलिया लपेट कर आबरू बचाई और उसी धजा में कमीशन की अफसरी भी करनी पड़ी। मगर अब मालूम हुआ कि खाली बनियाइन और तौलिया लपेट कर अफसरी नहीं की जा सकती। मैं कहता कुछ था और जरीब खींचने वाले करते कुछ थे। और लड़ने को भी तैयार हो जाते थे। नाक में दम हो गया।

इस हुलिया में जब एक बजे दिन को श्रीकान्तजी के गाँव पहुँचा तब किसी को विश्वास ही नहीं होता था कि मैं वकील हूँ और कमिश्नर बनकर आया हूँ। आखिर एक मुंहफट से न रहा गया। वह लपक कर मुझसे हाथ मिलाते हुए कह ही बैठा—"पञ्च प्रधानों की बदौलत तो हम लोगों को देहाती हाकिम तो देखने को मिले हैं मगर आप तो उनसे भी बढ़ कर एक दम बघेला हाकिम निकले।

लो चुटकी बजाते ही मैं इस नाम से जवार भर में मशहूर हो गया।

× × × ×

दो दो वकील, जिनमें एक घर का युवराज, खातिर दारियों का ठिकाना न रहा। घड़ी घड़ी चाँदी की तश्तरी में पान और झिनकुआ हर वक्त चाँदी के लोटा गिलास में पानी लिये खोपड़ी पर सवार।

खाने का हाल न पूछो। शायद ही कोई ऐसा पकवान हो जो न बना हो। खूब डट कर खाया। हाथ मुँह धोते दो बज गये। श्रीकान्तजी ने कहा बिना कुछ आराम किये हाथी पर बैठना क्या मैं हिल भी नहीं सकता। यही हाल मेरा भी था। उधर मेरे कपड़े भी ससुराल जाने लायक नहीं रह गये। पाजामा सिलवाने से कुछ काम चलाऊ तो जरूर हो गया मगर कुर्ता साबुन से धोने पर भी मटमैला ही रहा। हाथी भी एक से दो नहीं बनाया जा सकता था कि एक मुझे बैठाल कर इस वक्त चले और एक श्रीकान्तजी के लिये रुका रहे। इस-लिये वहाँ से रवाना होने के लिये चार बजे रात को ठहरी। मैंने भी सोच लिया कि सुबह की बस से बजाय ससुराल जाने के—क्योंकि वहाँ कोई होगा नहीं—बलरामपुर स्टेशन जाऊंगा और वहाँ से दस बजे दिन की गाड़ी से सीधे तुलसी-पुर पहुँचूँगा। सफ़र में मिलने से मटमैले कुर्ते का कोई ख्याल न करेगा।

एक घने पेड़ के नीचे हमलोगों की चारपाइयाँ बिछीं। मगर आराम करना कहाँ नसीब। सारे गाँव और जवार के लोग हम लोगों को घेर कर बैठ गये। कोई पञ्च, प्रधान और पञ्चाइती अदालतों के नाम पर आँसू बहाता था, कोई शिकमियों और अधिवासियों द्वारा खेत निकल जाने पर छाती पीटता था और कोई लेखपालों की धांधली और पढ़ाई के खर्चे पर अपना सर फोड़ रहा था।

श्रीकान्त जी बोले—"पञ्चाइती अदालतों के तारीफ की अखबारों में रोज ही धूम मची रहती है ताज्जुब है आप लोग ऐसा क्यों कहते हैं।"

एक वृद्ध सज्जन ने कहा—"भइया दूर के ढोल सोहावने होते हैं। वह लोग दिखाने वाले दाँत देखते हैं। खाने वाले दाँत का हाल वह क्या जाने जिनसे हम लोग खाये जा रहे हैं। आज के दिन तुम्हारे पास हाथी न होता तो तुम भला यहाँ तक पहुँच पाते ? अगर कोई गाँव में मरता हो हम किस तरह यहाँ तक डाक्टर ला सकते हैं। रास्ता बनवाना, गन्दगी दूर करना तो अलग रहा जो रास्ता है भी उसको भी यार लोग जोतते चले जाते हैं इनकी बला से। इन्हें तो बस यही फिक्र लगी रहती है कि कोई चैन से बैठने न पाये। एक दूसरे को आपस में लड़ाते रहें जिससे हमारा उल्लू सीधा हो। हमारे जवार में तो यही हाल है और कहीं रामराज हो तो हमें क्या ?"

मेरे मुँह से आप से आप निकल गया—

"एक तो नयना मद भरे, दूजे अञ्जन सार।
अरु बौरी ओड देत है, मतवारिन हथियार॥

इस बेतुकेपन पर कई आदमी तो हँस पड़े। मगर श्रीकान्त जी फड़क उठे और लगे झूम झूमकर कहने—वाह भाई कमाल कर दिया। दिखला दिया कि सचमुच आप लेखक हैं। वाह ! वाह ! तारीफ नहीं हो सकती। योजना की भी तारीफ और पात्र

और समय की भी वास्तविकता साथ ही साथ। खूब। इस पद को तो इस प्रसंग पर चिपका कर ऐसा सामयिक बना दिया कि क्या कहना है! वाह! इसको कहते हैं लेखक की सूझ।"

वृद्ध सज्जन की आँखें चमक उठीं। वह भी मुझसे हाथ मिलाते हुए कहने लगा—"वाह बाबू साहब! बहुत सही कहा। बालू को हम दूध से भी सींचे तो वह अनाज नहीं पैदा कर सकता। इसमें शक नहीं इसकी योजना और उद्देश्य बहुत उत्तम है मगर कब? जब हममें जातीयता का भाव हमारे रोम-रोम में सञ्चार हो जाये, और यह भाव सच्चाई, ईमानदारी, प्रेम, सहयोग, त्याग और आत्म-बलिदान के बिना पैदा हो ही नहीं सकता। इसीलिये हमारा सनातनी उद्देश्य सदा यही रहा है कि "आत्मवत सर्व्व भूतेषु परद्रव्येषु लोष्टवत" यानि अपने प्राण के समान दूसरे का प्राण और पराये धन को ठीकरों के समान समझो।"

एक दूसरे सज्जन झुँझलाकर बोले—"समझ चुके। मैं कुल बीस बिगहे का काश्तकार जिसमें से चौदह बिगहे पर लेखपालजी ने कुछ ऐसा हाथ साफ किया कि वह सब निकल कर उनके बाप का हो गया जिनका कब्जा उनपर दर्ज था। उन लोगों से जब कहता हूँ कि भाई बेइमानी न करो हमारा खेत हमें वापस दो, तब वह सर फोड़ने को तैय्यार हैं। खेत ही यहाँ का मुख्य धन है उसको जो चाहे जबरदस्ती कब्जा करके या लेखपालजी की मदद से ले जाये और हम मुँह ताकते

रह जायें तब यहाँ कभी ईमानदारी व सच्चाई पनप सकती है ? कि प्रेम या सहयोग उत्पन्न हो सकता है या जातीयता का जन्म हो सकता है ? खेती-बारी भी अन्य कामों की तरह बिना सहयोग के हो नहीं सकती। सहयोग लो तो खेत से हाथ धोओ, और दुश्मनी लेकर अपनी जान भी दो। ऐसी दशा में जातीयता के तो नहीं, चोरी डकैती और सीनाजोरी के भाव पैदा हो जायँ तो कोई ताज्जुब नहीं !"

तीसरे से न रहा गया। वह गिड़गिड़ा कर कहने लगा—"लेखपाल के हाल न पूछो दादा, जेहमा हत्यारी नाथ ? दूहबो उनसे हारा है। जेहका चाहें राखें, चाहे बिलवाय दें। उनके तो मोल बैइठले नाहीं।"

एक मौलवी साहब भी बोल उठे—"कैसे बैठे ? वह पटवारी तो हैं नहीं, लेखपाल कहलाते हैं तब राजपाल से अपने को कैसे कम समझें ? आखिर काफिया तो वही है। पतलून पहनते हैं। इन्ट्रेन्स और इन्टर पास हैं। आप लोग जानते ही हैं कि पढ़ाई का खर्चा इतना बढ़ा हुआ कि कोई मामूली आदमी बिना रिश्वत लिये बच्चे को पढ़ा ही नहीं सकता। फिर जिसकी पढ़ाई रिश्वत के बल पर हुई हो वह रिश्वत तो लेगा ही और ईश्वर ने जब इसके लिये मौका भी दे रखा है तब न ले तो बेवकूफ है।"

मेरे सुनाये हुए पद की तारीफों से कुछ लोगों की श्रद्धा मेरे प्रति बढ़ गई थी। उसके साथ यह जानकर कि मैं लेखक भी

हूँ। बहुत से लोग मुझसे अलग बातें करने के लिये उत्सुक हो गये। इस प्रकार एक मण्डली से दो मण्डली हो गईं।

एक श्रीकान्तजी को घेरकर पूछने लगी कि जो खेत असामियों और अधिवासियों के नाम से निकल गये वह किस प्रकार वापस मिल सकते हैं। और कोई पूछता कि मुझे कोई ऐसी तरकीब बताइये कि मुझे पञ्चाइत का मुँह न देखना पड़े। दूसरी मण्डली मुझे घेरे हुए लेखक और लेखककला के सम्बन्ध में सैकड़ों बातें पूछने लगी, श्रीकान्तजी ने तो अपनी मण्डली में तीन मुकदमें लेकर डेढ़ सौ रुपये का सौदा कर लिया। मगर मेरी मण्डली में दिमाग चाटने वाले सभी थे और टका देने वाला कोई भी नहीं। जब प्रश्नों से नाक में दम होगया तब एक के प्रश्न पर कि—"आप किस तरह लिखते हैं?"

मैंने झल्लाकर कहा कि—"कभी बैठकर कभी लेटकर।" लोग हँस तो दिये। फिर भी जान न छूटी। प्रश्नों का ताँता वैसाही चला। थोड़ी देर तक सबकी सुनता रहा। जब एक ने पूछा कि—"मैं कहानी का अन्त सोच नहीं पाता। उसके लिये क्या करूँ?"

तब यह उत्तर देते हुए कि "कुछ भी नहीं। अगर आप अन्त सोच नहीं पाते तो आपके लिये कहानी लिखना बेकार है। क्योंकि मोर की तरह कहानी की असली शोभा उसकी दुम में ही होती है।" फिर मैंने सबको एक ही लाठी से हाकना शुरू किया—"अगर आप सचमुच लेखक बनना चाहते हैं तो प्रकृति

की सेवा कीजिये, अनुभव, ज्ञान-उपज और निरीक्षण को बढ़ाइये, वास्तविकता और नवीनता को ढूँढिये। हर प्रकार के स्त्री और पुरुष से घुलमिल कर उनका अध्ययन कीजिये। कला और शैली के लिये विख्यात और लोकप्रिय लेखकों की रचनायें पढ़िये। लोकप्रियता ही सच्ची सफलता है! क्योंकि असली समालोचक जनता है जिसकी जेब में पैसे खर्च होते हैं। तब एकान्त में बैठकर स्वाभाविकता के सहारे कल्पना को उड़ाइये और संसार को नित उसकी कोई नई छटा दिखाइये। मगर इतनी गहरी छान-बीन के साथ लेख तय्यार करने में काफी समय और बेफिक्री चाहिए फिर भी इसकी यहाँ रत्ती बराबर भी कदर नहीं। इसलिये सबसे सहल नुस्खा आप लोगों के लेखक बनने का यह है कि आप कोष और शिष्टाचार की उपासना करें और कल्पना के सहारे हर चरित्र को देवी-देवता के रूप में ढालते जायं। आपके लेख धड़ाधड़ छपने लगेंगे। और उनका संग्रह, अगर पाठ्य-पुस्तक चुनने वालों में आपका कोई है, तो स्कूल और कालिज में पढ़ाने के लिये फ़ौरन भी लिया जायेगा। क्योंकि बिना मास्टरों के पढ़ाये वह किसी की समझ में आही नहीं सकता...''

खैरियत हो गई कि यकायक पानी बरसने लगा फिर तो सबको सर पर पाँव रखकर भागना पड़ा।

× × ×

चिराग जल गये, रात हो गई फिर भी पानी बरसना बन्द

नहीं हुआ। बल्कि रह रह-कर बढ़ता ही जाता था। पास में कहीं पत्थर भी गिरा था इससे सर्दी भी काफी होने लगी।

रात का खाना भी एक से एक बढ़ कर था। मैं भूल गया कि पेट अपना है। खूब खाया।

बरामदे में बौछार आती थी। इसलिये मेरा बिस्तर डेवढ़ी में जिसका एक द्वार बाहर और एक द्वार जनाने खाने की तरफ था, निहायत तकल्लुफ से बिछाया गया। ओढ़ने के लिये बिल्कुल नया दोशाला था और मसहरी भी लगाई गई। सिरहाने छोटी मेज पर बड़ी सी चाँदी की तश्तरी में पान भरा चाँदी का पनडब्बा, चाँदी के लोटे में पानी और चाँदी का ग्लास भी था।

भिनकू सर में तेल लगाने पहुँचा। वह था अभी कुल १० या ११ वर्ष का मगर था कानूनी और जिद्दी। मेरे लाख मना करने पर भी उसने हाथ में तेल उड़ेल कर मेरे सर में चिभोर ही दिया। कहीं तकिया न खराब हो जाये इस ख्याल से मैं बिस्तरे से उठ कर कुर्सी पर बैठ गया।

भिनकुआ मेरे सर पर तबला बजाने लगा। उसके कथनानुसार उसने तेल मालिश की कला, अपने मामा के साथ जब लखनऊ गया था, उस्ताद छेदी मियाँ से सीखी थी। उसके मामा ककरौले में रहते हैं। और फिर वह उनके साथ लखनऊ जाने के इरादे में है।

जब वह जाने लगा उसे मैंने एक चवन्नी दी, और पर्स को तकिये के नीचे रखा। हैन्डबैग को भी सिरहाने के तरफ डाल दिया। दोनों तरफ के दरवाजे बन्द किये और लम्प बुझा कर बिस्तरे पर लेट गया।

यकायक मेरी आँख खुली, पानी बरसने की आवाज बन्द थी। पेट की मरोड़ और ऐठन से मैं परेशान होने लगा। अब समझा कि जब किसी के यहाँ रात काटनी हो तो रात में हर्गिज-हर्गिज न खाना खाये और न पानी पीये। एक-एक मिनट काटना मुश्किल हो गया। अन्दर घड़ी में तीन बजते सुना। अब तो उठना जरूरी था ही। बेग में से टटोल कर लोटा निकाला। चाँदी के लोटे से उसमें पानी उड़ेला। क्योंकि चाँदी के लोटे से पानी भलेही पीलूं मगर और काम उससे नहीं ले सकता था। दरवाजा ढूंढने के लिये दीवाल टटोलता हुआ चला। दरवाजा खोला तो मालूम हुआ कि बजाय बाहर के भीतर जाने वाला खुल गया। सब गहरी नींद में खर्राटे भर रहे थे। लालटेन की टिमटिमाहट में आँगन के उस पार पिछवाड़े का दरवाजा दिखाई पड़ा जिसके सामने पेड़ के नीचे हमने दिन में आराम किया था। यह ख्याल आया कि द्वार बन्द करके बाहर का दरवाजा टटोलूं। मगर पेट ने वह आफत मचा रक्खी थी कि मैं आगे बढ़ता ही चला गया। और पिछवाड़े का दरवाजा खोलकर चट बाहर हो गया।

अभी दोही कदम आगे गया था कि सारे गाँव के कुत्तों

का मुझ पर धावा हो गया। जब तक मैं भागते-भागते सीवान के बाहर नहीं हो गया तब तक कम्बख्तों ने जान न छोड़ी।

जब लौटने की तैयारी की तो यकायक जोरों से पानी बरसने लगा। पड़ोस में कोई पेड़ भी नहीं। घबराहट और अन्धकार में छतरी भी लाना भूल गया था। गाँव जब लगभग पचास गज रह गया तो ओलों की बौछार शुरू हो गई। कपड़े तो तर हो ही चुके थे अब प्राण भी जाने की नौबत आ गई। दोनों हाथ मय लोटा के सर पर रखे और पानी कीचड़ में छप-छप करते दौड़ने लगा। कई जगह फिसला और एक जगह दलदल में एक पैर ऐसा घुसा कि पैर तो किसी तरह निकल आया मगर जूता उसी में रह गया। पत्थरों के मारे उसे निकालने तक का मौका न मिला।

मैं किस तरह जीता जागता एक पेड़ के नीचे पहुँच गया, मुझे खुद ताज्जुब है।

जूते के लालच में मैं वहीं डेढ़ घन्टे तक खड़ा अन्दाजता रहा कि कहाँ पैर धसा था। पत्थरों की बौछार बन्द होने पर मैं अपने अनुमान के अनुसार वहाँ गया और ढूंढा भी मगर पानी हर तरफ भर जाने से उसका कुछ पता न चला। तब गुस्से में दूसरा भी जूता वहीं फेंक कर तुलसीपुर जाने का विचार ही त्याग दिया। 'क्योंकि अब तो किसी तरह गोंडे ही पहुँच जाना मेरे लिये अहोभाग्य था।'

झुटपुटा हो गया था। मैं थर-थर काँप रहा था। दाँत

किटकिटा रहे थे। पानी की वजह से कुत्ते भी कहीं दुबके हुये थे। श्रीकान्त जी के पिछवाड़े का दरवाजा ढकेलने पर भी नहीं खुला। सामने पहुँचा तो वहाँ कई जलते हुए लालटेनों के सामने एक नया नाटक हो रहा था।

फीलवान मुझे देखते ही बोल उठा—"अरे! आप तो हँये हैं हम सभे तो समझेन कि रतिये के चला गयेन।"

मैं कुछ समझा नहीं। श्रीकान्त जी ने एक कमीज और धोती भीतर से लाकर दी और मैंने उसको पहना तब जान में जान आई।

मैंने पूछा—"मामला क्या है?"

श्रीकान्त जी के पिता ने बताया कि—"मुझे अफसोस है कि आपका सामान गायब हो गया।"

मैंने लपक कर तकिया उठा कर पर्स देखा तो उसका भी पता न था।

मैंने हिचकिचाते हुए पूछा—"चाँदी के बरतन और दुशाला?

वह बोले—"वह भी गायब है।"

इसके बाद कहने लगे—"आप बाहर का दरवाजा खोलकर चले गये किसी को जगाया भी नहीं। चोर इसी रास्ते आया। यहाँ का सामान लेकर भीतर गया। खैरियत हुई झिंगुआ जग पड़ा। और उसने शोर मचाया तब चोर खिड़की के रास्ते

निकल गया नहीं तो आज हम लोग अच्छी तरह से लुट गये होते ।"

मेरे मुंह में तो ऐसी कालिख लगी कि मुझसे न यह कहते बन पड़ा कि मैंने बाहर का द्वार खोला तक नहीं और न यह कि मैं ही जनानखाने में घुसकर पिछवाड़े से निकला था।

थोड़ी देर तक चुप रहकर मैंने रूंधे स्वर से कहा—"इसमें शक नहीं कि मेरी गलती से आप लोगों का बड़ा नुकसान हुआ इसका मुझे जन्म भर तक पश्चाताप रहेगा। जहाँ इतना नुकसान हुआ वहाँ मुझे कर्ज देकर २) का और नुकसान कीजिये ताकि मैं उतरौले से गोंडे का बस का टिकट तो खरीद लूं।

सात बजे सुबह को जब पानी एकदम बन्द हो गया हम लोग उतरौला के लिये रवाना हुए। श्रीकान्तजी के पिता भी किसी काम से साथ चले। वह हाथी पर आगे थे। बीच में बैठे श्रीकान्तजी और सबसे पीछे मैं।

कुछ दूर चलने पर फीलवान ने कहा—"अरे! यह जञ्जीर हींया काहे पड़ा है।" उसे देखा तो वह मेरी जरीब निकली।

जब उतरौला बिल्कुल पास आ गया तो एक लड़का छतरी लगाये गाता हुआ जाता दिखाई पड़ा। वह गाने में इतना मस्त था कि जब तक पास पहुँच कर फीलवान ने डाँट कर मेंड़ पर से हटने को नहीं कहा तब तक उसे पीछे की कुछ खबर न थी।

वह हम लोगों को देखते ही ऐसा घबरा उठा कि उसकी बगल से कोई चीज भद से गिर पड़ी।

श्रीकान्त जी के पिता बोल उठे—"अरे! भिनकुआ तू यहाँ कहाँ है?" साथ ही मैंने भी पूछा—"क्यों बे तू मेरा हैन्डबैग कहाँ लिये जा रहा है।"

उसने चट जेब से एक चवन्नी निकाल कर दिखलाते हुए धड़ से जवाब दिया—"आपे तो यह चवन्नी देकर कहिन रहा कि तू चुप्पे से हमार सामान उतरौला ले चलो। हम तुगका गोंडा ले चलब और दूना तनखा देब।"

अब तो काटो तो मेरे खून नहीं। फिर अपनी सफाई में किसी तरह डाँट कर पूछने की कोशिश की—"और मैंने यह भी कहा था कि तुम जरीब रास्ते में फेक देना।"

वह रोते हुये बोला—"हीया तक जब बेग लाद के लायन तब भूठे तेहा दिखावत हैं। ले जाओ आपन सामान। हम न जाब गोंडा।"

वह बेग और छतरी छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। हाथी ने सूँढ़ से उनको ऊपर पहुँचाया। और मैं बेग खोल कर अपना पर्स ढूँढने लगा। वह तो न मिला। मगर जब उसमें से दुशाले में लिपटा हुआ चाँदी की तश्तरी मुड़ कर पराठे के रूप में और चाँदी का लोटा गिलास और पनडब्बा निकला तब तो मेरी आँखें निकल पड़ीं। मैं कुछ ऐसा गड़बड़ाया कि बेग के

साथ में भी पीछे की तरफ टपक पड़ा। खैरियत हो गई कि न जाने कैसे हाथी की दुम मेरे हाथ में आ गई और मैं लटका हुआ रह गया।

इस वक्त भी यही मालूम हो रहा है कि मैं उसी तरह लटका हुआ ससुराल का स्वप्न देख रहा हूँ।

तुम्हारे

"वह"

बड़ी बूआ सलाम

लेखक महोदय की अपूर्व कलाओं से चकित होकर मैंने उनपर एक आलोचनात्मक लेख 'हास्य-रस शिल्पी जी० पी० श्रीवास्तव' नामक लिख मारा जो पटने की 'अवन्तिका' में इसी जुलाई अङ्क में निकला। उस अङ्क को मैंने लेखक महोदय को भेज दिया। उसके लिये लेखक महोदय ने जो यह धन्यवाद का पत्र 'अवन्तिका' को लिखा है वह साहित्यिक दृष्टि से कितना अपूर्व और अनुपम हुआ है यह प्रत्यक्ष है। साथ ही उसमें स्त्री चरित्र तथा अज्ञानी समालोचकों पर जो चुटकियाँ ली गई हैं वे कितनी सुन्दर, नवीन और विलक्षण तथा हास्यपूर्ण हुई हैं बताई नहीं जा सकती स्वयं अनुभव करने की चीज है।

सच्ची बातों में साहित्यिकता, नवीनता, सजीवता, रोचकता, लालित्य, हास्य तथा व्यंग का इस प्रकार कूट-कूट कर भर देना लेखक महोदय की लेखनी का कमाल है।

—सम्पादक

श्रीमती अवन्तिका रानी,

आहा ! नाम तो बड़ा सुन्दर है। रंग रूप कांट छांट और चाल ढाल का क्या कहना है। मगर यह पता नहीं कि आपका मेका पाटलीपुत्र में है या ससुराल। इसीलिये कुछ कह नहीं पाता। क्योंकि मेरी भी बपौती कभी वहीं थी। वेदान्त सिद्धान्त इत्यादि तो यह कहते हैं कि सुन्दरियों का घर ससुराल ही समझा जाता है। तब फिर मैं भी क्यों न ऐसा समझूँ ? अगर निशाना मेरा ठीक बैठा तो फिर क्या, लाइये हाथ। पाणिग्रहण तो कर लूँ।

चौंकिये नहीं यह अंग्रेजी वाला प्राणीग्रहण जिसे Shake Hand अर्थात् खाली हाथ मिलव्वल कहते हैं। संस्कृत वाले तो न जाने इसके क्या क्या मानी निकालते हैं। कहो कुछ और समझा जाये कुछ वह भी कोष महारानी की मदद से। इसीलिये तो मैं संस्कृत से कोसों दूर भागता हूँ। यह तो मैंने इसलिये लिख दिया कि कहीं आप मुझे संस्कृत में बिलकुल निपोड़-संख न समझ बैठें क्योंकि आप लोगों की निगाह में संस्कृत वालों का ही आदर है। वही लोग पंडित, ज्ञानी, लेखक सभी कुछ समझे जाते हैं स्वतन्त्रता के साथ हिन्दी के आप से आप राज भाषा बन जाने से इस जमाने में इन्हीं लोगों का बोल बाला भी है। मगर इन्हें तो अपनी पंडिताई के आगे भाषा से क्या

मतलब ? चाहे सर पर दौड़े या लंगाड़ती और कराहती चले इनकी बला से। नये धोबी की तरह कथरी में भी साबुन लगाते जाओ चाहे कथरी चीथड़े-चीथड़े हो जाये परवाह नहीं।

अरे! गजब! मैं तो आपकी सुन्दरता की चकाचौंध में ऐसा बौखला गया कि अब तक सलाम तक करने की सुधि न रही। क्षमा कीजिये और लीजिये प्रणाम स्थाने चरण चुम्बनं।

वाह! आप तो इतने ही में बिचक उठीं। क्या बताऊँ जवानी दगा दे गई नहीं तो मैं आपको हृदय के भीतर भी रख लेता और सर आँखों पर भी बैठालता क्योंकि दुर्भाग्य से मुझे पुरुष का चोला मिला है। कुछ गाय भैंस का नहीं कि भैंस के आगे बीन बजे और भैंस बैठी पगुराय। यहाँ तो सुन्दरता की झलक देखते ही पुरुष हृदय तड़प उठता है और फिर उसका आदर और सत्कार किये मान ही नहीं सकता। बिगड़ने को आपलोग चाहे कितना ही बिगड़ा करें। दुष्ट दुराचारी लम्पट भी कह डालें मगर आपका दिल क्या कहता है यह तो आपलोग खुद ही जानती होंगी। क्यों कि सच पूछिये तो सुन्दरियाँ पुरुषों के प्यार करने के लिये ही बनी हैं। जो पुरुष का चोला पाकर भी आप लोगों का आदर सत्कार नहीं करता वह सज्जन शिष्ट इत्यादि भले ही कहलाये मगर असलियत तो यह है कि वह पुरुष नहीं निखट्टू है या ढोंगी या फिर कन्या-राशी जैसा आपका हृदय सिसक कर बताता है।

ऐसे ही कन्या-राशी भय्या खुड़पेन्ची राम भी हैं। हैं तो

भतीजे मगर भाग्य की बलिहारी कि अब वह साहित्य के ठेकेदार बन कर चचा बन बैठे हैं। इसीलिये जहाँ वह पुरुष हृदय को आप लोगों के प्रति अपना कर्तव्य पालन करते देखते हैं वहाँ वह नाक भँव चढ़ा कर अश्लीलता के नाम पर ऐसा सीपों सीपों का राग अलापने लगते हैं कि मानो अपने हिसाब से अपनी साहित्यिकता की दुन्दुभी बजा रहे हैं ताकि लोग जानें कि हम बड़े साहित्य मरमज्ञ हैं।

ऐसा ही साहित्य-मगरमच्छ मुझे एक मुगलिया मिला था। वह कुछ शायरों के साथ साहित्य का आनन्द लेने एक मुशायरे में गया। वहाँ जो रस की धारा बही तो सभी लोग वाहवाही में मस्त होकर आनन्द की डुबकियाँ लगाने लगे। मगर मुगलिया भड़क उठा। यकायक खड़ा होकर जोरों से बमकने लगा—"लाहौल विला कूवत! तौबा! तौबा! यह सब, बदमाशी की बातें हैं! अस्तग़फ़रुल्ला! अस्तफ़रुल्ला!"—यह बड़बड़ाता हुआ दौड़ा नमाज पढ़ने।

मुझे चचा जान की दुन्दुभी याद आ गई। जहाँ ऐसे 'साहित्य परखइया' हों वहाँ इमानदारों के लिए तो लेखनी तोड़ कर बैठ जाना या उनकी पार्टी में शामिल होकर सोहर ही गाना उचित है। मगर दुर्भाग्य से पाला पड़ गया इस बेहया और मुँहफट से। इसलिये जितना ही वह अपना राग अलापते गये उतना ही वह मेरी लेखनी के विषय भी बनते गये। तब वह मुझे कोसेंगे नहीं तो क्या दुआ देंगे।

मगर खातिर जमा रखिये मैं इन लोगों के चक्कर में पड़कर आपलोगों का पूजना छोड़ नहीं सकता। आपही लोग साहित्य के प्राण और समस्त रोचकताओं की जड़ ठहरीं। सुन्दरियों ही के चरित्र सदा देवता, ऋषि, मुनी, ज्ञानी, कवि, नाटककार, औपन्यासिक आदि के अध्ययन और अनुसन्धान के विषय रहे हैं और तारीफ यह कि सब सर पटक के मर गये मगर कोई आज तक थर्ड डिवीजन भी पास न हो सका। यहाँ तक कि अलिफ लैला के जन्मदाता भी नहीं, जो अपने को इस रहस्य का ऐसा बेढब ज्ञानी समझता था कि वह नित ही नया और ताजा आम मँगवाता था—(अर्थात् रोज ही नई शादी करता था) और सुबह को गुठली जल्लाद के हवाले कर देता था। मगर उसे भी अन्त में एक छोकड़ी के आगे मुँह की खाकर आप लोगों का लोहा मानना ही पड़ा। तब मैं भला किस गिनती में हूँ ? न तीन में न तेरह में। फिर भी इतना कहने में कोई हर्ज नहीं समझता कि मुझे तो आपलोग "हजाहल" की कुछ ऐसी 'गड़बड़ चौथ' सी मिली हैं कि आप लोगों के सामने न जीता हूँ न मरता हूँ बस घुट घुट कर रह जाता हूँ।

एक तो आपलोग "नहीं" का ऐसा साक्षात् अवतार हैं कि "हाँ" कहना तो जानती ही नहीं, अगर भूले भटके धोखे में भी मुँह से "हाँ" निकल जावे तो वह 'नहीं" का भी बाप होता। है क्यों कि ईश्वर ने आपलोगों के दिल को पालिश करके

इतना चमाचम कर दिया है कि कोई बात याद रखने के लिये वहाँ अटक ही नहीं सकती। अगर कोई याद दिलाने की कोशिश भी करे तो यही सुनना पड़ता है—"वाह! अच्छे मिले! जान न पहचान! बड़ी बूआ सलाम!"

तभी तो मुझे यह याद दिलाने का साहस नहीं होता कि मुझे दावत दी गई थी। मगर कार्ड अबतक नहीं आया। वह तो श्रीमहेन्द्रजी ने अपनी थाली खिसका दी जिससे मैंने अपना पेट भर लिया। मगर वह बेचारे भूखे रह गये। अगर कुछ बचा खुचा हो तो उनकी सुधि लीजिये। और मुझ से भी लीजिये धन्यवाद पर धन्यवाद अपने लिये भी और महेन्द्रजी के लिये भी। क्यों कि मैं कोई कृतघ्न नहीं कि आप दोनों की कृपाओं को भूल जाऊँ और न मुझमें इतना दम ही है कि बिना धन्यवाद दिये कुछ हल्का फुल्का किये इस उपकार का बोझ लादे रह सकूँ।

जुलाई अङ्क के नाते आपके हृदय में बसने वाला—

जी० पी० श्रीवास्तव